# मुद्राराक्षस-नाटक

भूमिका शब्दार्थ, कठिन २ पद्यार्थ, टिप्पणी
और भावार्थ सहित
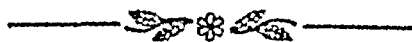
प्रकाशक—
साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा

प्रकाशक—
साहित्य-रत्न-भण
किनारीबाज़ार—आगरा।

# मुद्रा-राक्षस नाटक।

## पूर्व्व कथा

पूर्व्व काल में भारतवर्ष मे मगध राज्य एक बड़ा भारी जनस्थान था। जरासन्ध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहां बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी। इन लोगो ने अपना प्रताप और शौर्य्य इतना बढ़ाया था कि आज तक इनका नाम भूमण्डल पर प्रसिद्ध है। किन्तु काल-चक्र बड़ा प्रबल है कि किसी को भी एक अवस्था मे नही रहने देता। अन्त में * नन्दवंश ने पौरवो को निकाल कर वहां अपनी जयपताका उड़ाई; वरंच सारे भारतवर्ष में अपना प्रबल प्रताप विस्तारित कर दिया।

इतिहास ग्रन्थो में लिखा है कि एक सौ अड़तीस बरस नन्दवंश ने मगध देश का राज्य किया। इसी वंश मे महानन्द का जन्म हुआ। यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यन्त प्रतापशाली राजा हुआ। जब जगद्विजयी सिकन्दर (अलक्षेन्द्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब असंख्य हाथी, बीस हजार सवार और

---

* नन्दवंश सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था। ये लोग शुद्ध क्षत्री नहीं थे।

दो लाख पैदल लेकर महानन्द ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया था *। सिद्धान्त यह है कि भारतवर्ष में उस समय महानन्द सा प्रतापी और कोई राजा न था।

महानन्द के दो मंत्री थे। मुख्य का नाम शकटार और दूसरे का राक्षस था। शकटार शूद्र और राक्षस † ब्राह्मण था। ये दोनो अत्यन्त बुद्धिमान् और महा प्रतिभा सम्पन्न थे। केवल भेद इतना था कि राक्षस धीर और गम्भीर था, उसके विरुद्ध शकटार अत्यन्त उद्धतस्वभाव था। यहां तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता। महानन्द भी अत्यन्त उग्र-स्वभाव, असहनशीन और क्रोधी था, जिसका परिणाम यह हुआ कि महानन्द ने अन्त में शकटार को क्रोधान्ध होकर बड़े निविड़ बन्दीखाने में कैद किया और सपरिवार उसके भोजन को केवल दो सेर सत्तू देना नियत कर दिया ‡।

---

* सिकन्दर के कान्यकुब्ज से आगे न बढने के कारण महानन्द का उससे मुकाबिला नहीं हुआ।

† वृहत् कथा में राक्षस मन्त्री का नाम कहीं नहीं है, केवल वररुचि और एक सच्चे राक्षस की कथा यों लिखी है—एक बडा प्रचण्ड राक्षस पाटलिपुत्र में फिरा करता था। वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि "इस नगर में कौन स्त्री सुन्दर है?" वररुचि ने उत्तर दिया—"जो जिसको रुचे वही सुन्दर है।" इस पर प्रसन्न हो कर राक्षस ने उससे मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करेंगे। और फिर सदा राजकाज में प्रत्यक्ष हो कर राक्षस वररुचि की सहायता करता।

‡ वृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है। वररुचि व्याडि और इन्द्रदत्त तीनों को गुरु दक्षिणा देने के हेतु करोडों रुपये के

## पूर्व्व-कथा

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का अधिकार भोगा था इससे यह अनादर उसके पक्ष में अत्यन्त दुखदाई हुआ। नित्य सत्तू का बरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नन्दवंश के जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह यह सत्तू खाय। मन्त्री के वाक्य से दु खित हो कर उसके परिवार का कोई भी सत्तू न खाता। अन्त मे कारागार की पीड़ा से एक एक करके उसके परिवार के सब लोग मर गये।

एक तो अपमान का दुःख, दूसरे कुटुम्ब का नाश, इन दोनों कारणो से शकटार अत्यन्त तनछीन मन-मलीन, दीन-हीन हो

---

सोने की आवश्यकता हुई : तब इन लोगों ने सलाह की कि नन्द (सत्यनन्द) राजा के पास चल कर उस से सोना लें। उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था। ये तीनों ब्राह्मण वहा गये, किन्तु सयोग से इन्हीं दिनों राजा मर गया। तब आपस में सलाह करके इन्द्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड कर राजा के शरीर में चला गया, जिससे राजा फिर जी उठा। तभी से उसका नाम योगानन्द हुआ। योगानन्द ने वररुचि को करोड रुपये देने की आज्ञा की। शकटार बडा बुद्धिमान् था; उस ने सोचा कि राजा का मरकर जीना और एक अपरिचित वैरागी को करोड रुपया देना! इसमें हो न हो कोई भेद है। ऐसा न हो कि अपना काम करके फिर राजा का शरीर छोड कर यह चला जाय। यह सोच कर शकटार ने राज्य भर में जितने मुरदे मिले उनको जलवा दिया, इसी में इन्द्रदत्त का भी शरीर जल गया। जब व्याड़ि ने यह वृत्तान्त योगानन्द से कहा तो यह सुन कर पहिले तो दु खी हुआ फिर वररुचि को अपना मन्त्री बनाया। परन्तु अन्त में शकटार की उग्रता से सन्तप्त हो कर उसको अन्धे कुए में कैद किया। बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल नाम लिखा है।

गया। किन्तु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए और थोड़े बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रक्खा। रात दिन इसी सोच में रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा।

कहते हैं कि राजा महानन्द एक दिन हाथ मुंह धो कर हॅसते २ जनाने में आरहे थे। विचक्षणा नाम की एक दासी जो राजा के मुँह लगने के कारण कुछ धृष्ट हो गई थी, राजा को हॅसता देख कर हॅस पड़ी। राजा उसकी ढिठाई से बहुत चिढ़े और उस से पूछा—तू क्यों हॅसी? उसने उत्तर दिया—"जिस बात पर महाराज हॅसे उसी पर मैं भी हँसी।" महानन्द इस बात पर और भी चिढ़ा और कहा कि अभी बतला, मै क्यो हॅसा, नही तो तुझको प्राण दण्ड होगा। दासी से और कुछ उपाय न बन पड़ा और उसने घबड़ाकर इसके उत्तर देने को एक महीने की मुहलत चाही। राजा ने कहा—"आज से ठीक एक महीने के भीतर जो उत्तर न देगी तो कभी तेरे प्राण न बचेंगे।"

विचक्षणा के प्राण उस समय तो बच गये, परन्तु महीने के जितने दिन बीतते थे मारे चिन्ता के वह मरी जाती थी। कुछ सोच विचार कर वह एक दिन कुछ खाने पीने की सामग्री लेकर शकटार के पास गई और रो रो कर अपनी सब बिपत्ति कहने लगी। मन्त्री ने कुछ देर तक सोच कर उस अवसर की सब घटना पूछी और हँस कर कहा—"मैं जान गया राजा क्यो हॅसे थे। कुल्ला करने के समय पानी के छोटे छींटों पर राजा को बट-बीज की याद आई, और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े बड़ के वृक्ष इन्ही छोटे बीजों के अन्तर्गत हैं। किन्तु भूमि पर पड़ते ही वह जल के छींटे नष्ट हो गये। राजा अपनी इसी भावना को

याद करके हँसते थे।" विचक्षणा ने हाथ जोड़ कर कहा—"यदि आपके अनुमान से मेरे प्राण की रक्षा होगी तो मैं जिस तरह से होगा, आपको कैदखाने से छुड़ाऊंगी और जन्म भर आपकी दासी होकर रहूँगी।"

राजा ने विचक्षणा से एक दिन फिर हँसने का कारण पूछा, तो विचक्षणा ने शकटार से जैसा सुना था कह सुनाया। राजा ने चमत्कृत होकर पूछा—"सच बता, तुझसे यह भेद किस ने कहा?" दासी ने शकटार का सब वृत्त कहा और राजा को शकटार की बुद्धि की प्रशंसा करते देख अवसर पाकर उसके मुक्त होने की प्रार्थना भी की। राजा ने शकटार को बन्दी से छुड़ा कर राक्षस के नीचे मन्त्री बना कर रक्खा।

ऐसे अवसर पर राजा लोग बहुत चूक जाते है। पहिले तो किसी की अत्यन्त प्रतिष्ठा बढ़ानी ही नीति विरुद्ध है। यदि संयोग से बढ़ जाय तो उसकी बहुत सी बातों को तरह देकर टालना चाहिये, और जो कदाचित् बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य का राजा अनादर करे तो उसकी जड़ काट कर छोड़े, फिर उसका कभी विश्वास न करे। प्रायः अमीर लोग पहिले तो मुसाहिब या कारिन्दो को बेतरह सिर चढ़ाते हैं, और फिर छोटी २ बातों पर उनको प्रतिष्ठा हीन कर देते है। इसी से ऐसे लोग राजाओ के प्राण के ग्राहक हो जाते हैं और अन्त में नन्द की भाँति उनका सर्वनाश होता है।

शकटार यद्यपि बन्दी खाने से छूटा और छोटा मन्त्री भी हुआ, किन्तु अपनी अप्रतिष्ठा और परिवार के नाश का शोक उस के चित्त में सदा पहिले ही सा जागता रहा। रात दिन वह यही सोचता कि किस उपाय से ऐसे अव्यवस्थित चित्त उद्धत राजा का

नाश करके अपना बदला लें। एक दिन वह घोड़े पर हवा खाने जाता था। नगरके बाहर एक स्थान पर देखता है कि एक काला सा ब्राह्मण अपनी कुटी के सामने मार्ग की कुशा उखाड़ २ कर उसकी जड़ में मठा डालता जाता है, पसीने से लथपथ है, परन्तु कुछ भी शरीर की ओर ध्यान नही देता। चारो ओर कुशा के बड़े २ ढेर लगे हुए है। शकटार ने आश्चर्य्य से ब्राह्मण से इस श्रम का कारण पूछा। उसने कहा—मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है। मैं ब्रह्मचर्य्य मे, नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायन आदि संसार की उपयोगी सब विद्या पढ़कर विवाह की इच्छा से नगर की ओर आया था, किन्तु कुश गड़ जाने से मेरे मनोरथ मे विघ्न हुआ, इससे जब तक इन बाधक कुशाओं का सर्वनाश न कर लूंगा और काम न करूंगा। मठा इस वास्ते इनकी जड़ में देता हूं जिससे पृथ्वी के भीतर इनका मूल भी भस्म हो जाय।"

शकटार के जी में यह बात आई कि ऐसा पक्का ब्राह्मण जो किसी प्रकार राजा से क्रुद्ध हो जाय तो उसका जड़ से नाश करके छोड़े। यह सोच कर उसने चाणक्य से कहा कि जो आप नगर मे चल कर पाठशाला स्थापित करें तो अपने को मै बड़ा अनुगृहीत समझूं। मैं इसके बदले बेलदार लगाकर यहां की सब कुशाओ को खुदवा डालूंगा। चाणक्य इस पर सहमत हुआ और नगर मे आकर एक पाठशाला स्थापित की। बहुत से विद्यार्थी पढ़ने आने लगे और पाठशाला बड़े धूमधाम से चल निकली।

अब शकटार इस सोच मे हुआ कि चाणक्य और राजा मे किस चाल से बिगाड़ हो। एक दिन राजा के घर मे श्राद्ध था, उस अवसर को शकटार अपने मनोरथ सिद्ध होने का अच्छा समय सोच कर चाणक्य को श्राद्ध का न्यौता देकर अपने साथ

ले आया और श्राद्ध के आसन पर बिठला कर चला गया। क्योंकि वह जानता था कि चाणक्य का रङ्ग काला, आँखें लाल और दाँत काले होने के कारण नन्द उसको आसन पर से उठा देगा, जिससे चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसका सर्वनाश करेगा।

ठीक ऐसा ही हुआ—जब राक्षस के साथ नन्द श्राद्धशाला मे आया एक और अनिमन्त्रित ब्राह्मण को आसन पर बैठा हुआ और श्राद्ध के अयोग्य देखा तो चिढ़ कर आज्ञा दी कि इसको बाल पकड़ कर यहां से निकाल दो। इस अपमान से ठोकर खाये हुए सर्प की भाँति अत्यन्त क्रोधित होकर शिखा खोल कर चाणक्य ने सबके सामने प्रतिज्ञा की कि जब तक इस दुष्ट राजा का सत्यानाश न कर लूंगा तब तक शिखा न बाँधूगा। यह प्रतिज्ञा करके बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया।

शकटार अवसर पाकर चाणक्य को मार्ग मे से अपने घर ले आया और राजा की अनेक निन्दा करके उसका क्रोध और भी बढ़ाया और अपनी सब दुर्दशा कह कर नन्द के नाश में सहायता करने की प्रतिज्ञा की। चाणक्य ने कहा कि जब तक हम राजा के घर का भीतरी हाल न जानें कोई उपाय नहीं सोच सकते। शकटार ने इस विषय में विचक्षणा की सहायता देने का वृत्तान्त कहा और रात को एकान्त मे बुलाकर चाणक्य के सामने उससे सब बात का करार ले लिया।

महानन्द के नौ पुत्र थे। आठ विवाहिता रानी से और एक चन्द्रगुप्त मुरा नाम की एक नाइन स्त्री से। इसी से चन्द्रगुप्त को मौर्य और वृषल भी कहते हैं। चन्द्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान् था इसी से और आठों भाई इससे भीतरी द्वेष

रखते थे। चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी की बहुत सी कहानियां हैं
कहते हैं कि एक बेर रूम के बादशाह ने महानन्द के पास एक
कृत्रिम सिह लोहे की जाली के पिञ्जड़े में बन्द करके भेजा और
कहला दिया कि पिञ्जड़ा टूटने न पावे और सिंह इसमे से निकल
जाय। महानन्द और उसके आठ औसर पुत्रों ने इसको बहुत
कुछ सोचा, परन्तु बुद्धि ने कुछ काम न किया। चन्द्रगुप्त ने
विचारा कि यह सिह अवश्य किसी ऐसे पदार्थ का बना होगा जो
या तो पानी से या आग से गल जाय, यह सोचकर पहिले उसने
उस पिञ्जड़े को पानी के कुण्ड में रक्खा और जब वह पानी से न
गला तो उस पिञ्जड़े के चारो तरफ आग जलवाई, जिसकी गर्मी
से वह सिह, जो लाह और राल का बना था, गल गया। एक बेर
ऐसे ही किसी बादशाह ने एक अँगीठी मे दहकती हुई आग* एक

---

* दहकती आग की कथा—"जरासन्धमहाकाव्य" में लिखा है कि जरासन्ध ने उग्रसेन के पास अंगीठी भेजी थी, शायद उसी से यह कथा निकाली गई हो, कौन जाने।

सवैया—रूप की रूपनिधान अनूप अगीठी नई गढ़ि मोल मगाई।
ता मधि पावकपुंज धस्यो गिरिधारन जामें प्रभा अधिकाई॥
तेज सों ताके लजाई भई रज में मिली आसु—सबै रजताई।
मानो प्रवालको थाल बनाय कै लालकी रास बिसाल लगाई॥१॥
ढाक के पावक दूत के हाथ दै बात कही इहि भांति बुझाय कै।
भोज भुआल सभा मह सन्मुख राखि कै यों कहियो सिर नाय कै॥
याहि पठायो जरासुत नै अवलोकहु नीके अधीरज लाय कै।
पुत्र खपाय कै नातिन पाय कै जोहौ जै पायकै कौन उपाय कै॥२॥
दोहा—सुनत चार तिहि हाथ लै, गयो भैम दरबार।
वासव ऐसे कैक सब, जहँ बैठे सरदार॥३॥

बोरा सरसों और एक मीठा फल महानन्द के पास अपने दूत के द्वारा भेज दिया। राजा की सभा का कोई भी मनुष्य इस का आशय न समझ सका; किन्तु चन्द्रगुप्त ने सोच कर कहा कि अँगीठी यह दिखलाने को भेजी है कि मेरा क्रोध अग्नि है और सरसो यह सूचना कराती है कि मेरी सेना असंख्य है और फल भेजने का आशय यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है। इस के उत्तर से चन्द्रगुप्त ने एक घड़ा जल और एक पिंजड़े मे थोड़े से तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा, जिस का आशय यह था कि तुम्हारी सेना कितनी भी असंख्य क्यो न हो हमारे वीर उस को भक्षण करने में समर्थ है और तुम्हारा क्रोध हमारी नीति से सहज ही बुझाया जा सकता है और हमारी मित्रता सदा अमूल्य और एकरस है। ऐसे ही तीन पुतलियों वाली कहानी भी इसी के साथ प्रसिद्ध है। इसी बुद्धिमानी के कारण चन्द्रगुप्त से उस के भाई लोग बुरा मानते थे; और महानन्द भी अपने औरस पुत्रों का पक्ष कर के इससे कुढ़ता था। यह यद्यपि शूद्रा के गर्भ से था, परन्तु ज्येष्ठ होने के कारण अपने को राज का भागी समझता था, और इसी से इस का राजपरिवार से पूर्ण वैमनस्य था।

---

अडिल्ल—जायजरासुतदूतभैमपतिपदपर्‌यौ। देखिजराऊजगहहियेसभ्रमभर्‌यौ।
जगतजरावनद्रव्यपातआगे धर्‌यौ। सोचजरातै अभयहालबरननकर्‌यौ ॥४॥
सुनिविहसेजदुवीरजीतकीचायसों। हसिबोले गोविन्द कहहु यह रायसों।
उचितससुरपन कौन चक्रकुलन्यायसों। चही दमाद सहाय सुताकी हायसों ॥५॥

सोरठा—इमि कहि हुत गहि चाप, आप आप सिखि मै दियो।
तुरतहि गयो बुझाय, ज्ञान पाय मन भ्रात जिमि ॥ ६ ॥
बिदा कियो नृप दूत, उर में सर को अङ्क करि।
निरखि दृहदरथ पूत, सवन सहित कोप्यो अतिहि ॥ ७ ॥

चाणक्य और शकटार ने इसी से निश्चय किया कि हम लोग चन्द्रगुप्त को राज का लोभ देकर अपनी ओर मिला लें और नन्दों का नाश कर के इसी को राजा बनावें।

यह सब सलाह पक्की हो जाने के पीछे चाणक्य तो अपनी पुरानी कुटी में चला गया और शकटार ने चन्द्रगुप्त और विचक्षणा को तब तक सिखा पढ़ा कर पक्का करके अपनी ओर फोड़ लिया। चाणक्य ने कुटी में जाकर हलाहल विष मिले हुए कुछ ऐसे पकवान तैयार किये जो परीक्षा करने में न पकड़े जाँय, किन्तु खाते ही प्राणनाश हो जाय। विचक्षणा ने किसी प्रकार से महानन्द को पुत्रों समेत यह पकवान खिला दिया, जिस से बेचारे सब के सब एक साथ परमधाम को सिधारे*।

---

* भारतवर्ष की कथाओं में लिखा है कि चाणक्य ने अभिचार से मारण का प्रयोग कर के इन सबों को मार डाला। विचक्षणा ने वह अभिचार निर्माल्य को किसी प्रकार इन लोगों के अङ्ग में छुला दिया था। किंतु वर्तमान काल के विद्वान् लोग सोचते हैं कि उस निर्माल्य में मन्त्र का बल नहीं था, चाणक्य ने कुछ औषधि ऐसे विषमिश्रित बनाये थे कि जिन के भोजन वा स्पर्श से मनुष्य का सद्य नाश हो जाय। भट्ट सोमदेव के कथा सरित्सागर के पीठलम्ब के चौथे तरंग में लिखा है—"योगानन्द को ऊंची अवस्था में नये प्रकार की कामवासना उत्पन्न हुई। वररुचि ने यह सोचकर कि राजा को तो भोगविलास से छुट्टी ही नहीं है, इससे राजकाज का काम शकटार से निकाला जाय तो अच्छी तरह से चले। यह विचार कर और राजा से पूछ कर शकटार को अन्धे कूए से निकाल कर वररुचि ने मन्त्री पद पर नियत किया। एक दिन शिकार खेलने में गंगा में राजा ने अपनी पाचों उङ्गलियों की परछाईं वररुचि को दिखलायी। वररुचि ने अपनी दो उङ्गलियों की परछाईं ऊपर से दिखाई, जिससे राजा के हाथ की परछाईं

चन्द्रगुप्त इस समय चाणक्य के साथ था। शकटार अपने दुःख और पापो से सन्तप्त होकर निविड़ बन में चला गया और अनशन कर के प्राण त्याग किये। कोई कोई इतिहास लेखक कहते है कि चाणक्य ने अपने हाथ से शस्त्रद्वारा नन्द का बध किया और फिर क्रम से उस के पुत्रो को भी मारा, किन्तु

---

छिप गई। राजा ने इन सज्ञाओं का कारण पूछा। वररुचि ने कहा आप का यह आशय था कि पाच मनुष्य मिल कर सब कार्य्य साध सकते है। मैने यह कहा कि जो दो चित्त एक हो जॉय तो पाच का बल व्यर्थ है। इस बात पर राजा ने वररुचि की बडी स्तुति की। एक दिन राजा ने अपनी रानी को एक ब्राह्मण से खिडकी में से बात करते देख कर उस ब्राह्मण को मारने की आज्ञा दी, किन्तु अनेक कारणों से वह बच गया। वररुचि ने कहा कि आपके सब महल की यही दशा है और अनेक स्त्री वेषधारी पुरुष महल में रहते है और उन सबों को पकड कर दिखला दिया। इसी से उस ब्राह्मण के प्राण बचे। एक दिन योगानन्द की रानी के एक चित्र में, जो महल में लगा हुआ था, वररुचि ने जाघ में तिल बना दिया। योगानन्द को गुप्त स्थान में वररुचि के तिल बनाने से उस पर भी सन्देह हुआ और शकटार को आज्ञा दी कि तुम वररुचि को आज ही रात को मार डालो। शकटार ने उसको अपने घर में छिपा रक्खा और किसी और को उसके बदले मार कर उसका मारना प्रगट किया। एक बेर राजा का पुत्र हिरण्यगुप्त जगल में शिकार खेलने गया था, वहां रात को सिंह के भय से एक पेड पर चढ गया। उस वृक्ष पर एक भालू था, किन्तु उसने इस को अभय दिया। इन दोनों में यह बात ठहरी कि आधी रात तक कुंवर सोवें भालू पहरा दे, फिर भालू सोवे कुंवर पहरा दे। भालू ने अपना मित्र-धर्म्म निबाहा और सिंह के बहकाने पर भी कुंवर की रक्षा की। किन्तु अपनी पारी में कुंवर ने सिंह के बहकाने से भालू को ढकेलना चाहा, जिस पर उसने जागकर मित्रता के कारण कुंवर को मारा तो नही किन्तु कान

इस विषय का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। चाहे जिस प्रकार से हो चाणक्य ने नन्दों का नाश किया। किन्तु केवल पुत्र सहित राजा के मारने ही से वह चन्द्रगुप्त को राज सिंहासन पर न बैठा सका इस से अपने अन्तरङ्ग मित्र जीवसिद्धि को क्षपणक के वेष मे राक्षस के पास छोड़ कर आप राजा लोगो से सहायता लेने की इच्छा से विदेश निकला। अन्त में अफगानिस्तान वा उस के उत्तर ओर के निवासी पर्वतक नामक लोभ-परतन्त्र एक राजा से मिलकर और उस को जीतने के पीछे मगध राज्य का आधा भाग देने के नियम पर उस को पटने पर चढ़ा लाया। पर्वतक के भाई का नाम वैरोधक* और पुत्र का मलयकेतु था। और भी पांच म्लेच्छ राजाओं को पर्वतक अपने सहाय को लाया था।

---

में मूत दिया, जिससे कुंवर गूंगा और बहिरा हो गया। राजा को बेटे की इस दुर्दशा पर बड़ा सोच हुआ और कहा कि वररुचि जीता होता तो इस समय उपाय सोचता। शकटार ने यह अवसर समझ कर राजा से कहा कि वररुचि जीता है और लाकर राजा के सामने खडा कर दिया। वररुचि ने कहा—कुंवर ने मित्र द्रोह किया है उसका फल है। यह वृत्त कहकर उस को उपाय से अच्छा किया। राजा ने पूछा—तुमने यह सब वृत्तान्त किस तरह जाना? वररुचि ने कहा—योग बल से जैसे रानी का तिल। (ठीक यही कहानी राजाभोज, उसकी रानी भानुमती और उसके पुत्र और कालिदास की भी प्रसिद्ध है) यह सब कह कर और उदास होकर वररुचि जगल में चला गया। वररुचि से शकटार ने राजा के मारने को कहा था, किंतु वह धर्मिष्ट था इससे सम्मत न हुआ। वररुचि के चले जाने पर शकटार ने अवसर पा कर चाणक्य द्वारा कृत्या से नन्द को मारा।

* लिखी पुस्तकों में यह नाम विरोधक, वैरोधक, वैरोचक, वेबोधक, विरोध, वैराध इत्यादि कई चाल से लिखा है।

इधर राक्षस मन्त्री राजा के मरने से दुःखी होकर उस के भाई सर्वार्थ सिद्धि को सिंहासन पर बैठा कर राजकाज चलाने लगा। चाणक्य ने पर्वतक को सेना लेकर कुसुमपुर चारों ओर से घेर लिया। पन्द्रह दिन तक घोरतर युद्ध हुआ। राक्षस की सेना और नागरिक लोग लड़ते लड़ते शिथिल हो गए; इसी समय मे गुप्त रीति से जीवसिद्धि के बहकाने से राजा सर्वार्थ-सिद्धि बैरागी हो कर बन मे चला गया, इस कुसमय मे राजा के चले जाने से राक्षस और भी उदास हुआ। चन्दनदास नामक एक बड़े धनी जौहरी के घर में अपने कुटुम्ब को छोड़ कर और शकटदास कायस्थ तथा अनेक राजनीति जानने वाले विश्वास पात्र मित्रों को और कई आवश्यक काम सौंप कर राजा सर्वार्थसिद्धि के फेर लाने के लिये आप तपोवन की ओर गया।

चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब सुन कर राक्षस के पहुँचने के पहले ही अपने मनुष्यों से राजा सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला। राक्षस जब तपोवन मे पहुँचा और सर्वार्थसिद्धि को मरा देखा तो अत्यन्त उदास हो कर वहीं रहने लगा। यद्यपि सर्वार्थसिद्धि के मार डालने से चाणक्य की नन्दकुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, किन्तु उसने सोचा कि जब तक राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री न होगा तब तक राज्य स्थिर न होगा। वरंच बड़े विनय से तपोवन मे राक्षस के पास मन्त्रित्व स्वीकार करने का सन्देसा भेजा परन्तु प्रभुभक्त रासक्ष ने उस को स्वीकार नहीं किया।

तपोवन मे कई दिन रह कर राक्षस ने यह सोचा कि जब तक पर्वतक को हम न फोड़ेंगे काम न चलेगा। यह सोच कर वह पर्वतक के राज्य मे गया और वहां उसके बूढ़े मन्त्री

से कहा कि चाणक्य बड़ा दगाबाज़ है, वह आधा राज कभी न देगा, आप राजा को लिखिए, वह मुझसे मिले तो मैं सब राज्य उन को दूं। मन्त्री ने पत्र द्वारा पर्वतक को यह सब वृत्त और राक्षस की नीति कुशलता लिख भेजी और यह भी लिखा कि मैं अत्यन्त वृद्ध हूँ, आगे से मन्त्री का काम राक्षस को दीजिये। पाटलिपुत्र विजय होने पर भी चाणक्य आधा राज्य देने में विलम्ब करता है, यह देखकर सहज लोभी पर्वतक ने मन्त्री की बात मानली और पत्र द्वारा राक्षस को गुप्त रीति से अपना मुख्य अमात्य बनाकर इधर ऊपर के चित्त से चाणक्य से मिला रहा।

जीवसिद्धि के द्वारा चाणक्य ने राक्षस का सब हाल जान कर अत्यन्त सावधानता पूर्वक चलना आरम्भ किया। अनेक भाषा जानने वाले बहुत से धूर्त पुरुषो को वेष बदल बदल कर भेद लेने के लिये चारो ओर नियुक्त किया। चन्द्रगुप्त को राक्षस का कोई गुप्त चर धोखे से किसी प्रकार की हानि न पहुँचावे इस का भी पक्का प्रबन्ध किया और पर्वतक की विश्वसघातकता का बदला लेने के दृढ़ संकल्प से, परन्तु अत्यन्त गुप्त रूप से, उपाय सोचने लगा।

राक्षस ने केवल पर्वतक की सहायता से राज के मिलने की आशा छोड़ कर कुलूत * मलय, काश्मीर, सिन्धु और पारस इन पांच देशो के राजा से सहायता ली। जब इन पांचो देश के राजाओं ने बड़े आदर से राक्षस को सहायता देना स्वीकार किया तो वह तपोवन के निकट फिर से लौट आया

* कुलूत देश किलात वा कुल्लू देश।

और वहाँ से चन्द्रगुप्त के मारने को एक विष कन्या* भेजी और अपना विश्वासपात्र समझ कर जीवसिद्धि को उसके साथ कर दिया। चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब बात जान कर और पर्वतक की धूर्तता और विश्वासघातकता से क्रुद्ध कर प्रगट में इस उपहार को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया और लाने वाले को बहुत सा पुरस्कार देकर बिदा किया। साँझ होने के पीछे धूर्ताधिराज चाणक्य ने इस कन्या को पर्वतक के पास भेज दिया और इन्द्रिय-लोलुप पर्वतक उसी रात को उस कन्या के सग से मर गया। इधर चाणक्य ने यह सोचा कि मलयकेतु यहाँ रहेगा तो उस को राज्य का हिस्सा देना पड़ेगा, इससे किसी तरह इसको यहाँ से भगावें तो काम चले। इस कार्य्य के हेतु भागुरायण नामक एक प्रतिष्ठित विश्वासपात्र पुरुष को मलयकेतु के पास सिखा पढ़ा कर भेज दिया। इसने पिछली रात को मलयकेतु से जाकर उस का बड़ा हितैषी बन कर उससे कहा कि आज चाणक्य ने विश्वासघात करके आपके पिता को विष कन्या के प्रयोग से मार डाला और औसर पाकर आपको भी मार डालेगा। मलयकेतु बेचारा इस बात के सुनते ही सन्न हो गया और पिता के शयनागार में जाकर देखा तो पर्वतक को बिछौने पर मरा हुआ पाया। इस भयानक दृश्य के देखते ही मुग्ध मलयकेतु के प्राण सूख गये और भागुरायण की सलाह से उस रात को छिप कर वहां से भाग कर

* विषकन्या शास्त्रों में दो प्रकार की लिखी हैः—एक तो थोड़े से ऐसे बुरे योग हैं कि उस लग्न में उस प्रकार के ग्रहों के समय जो कन्या उत्पन्न हो उसके साथ जिसका विवाह हो वा जो उसका साथ करे वह साथ ही वा शीघ्र ही मर जाता है। दूसरे प्रकार की विषकन्या वैद्यक रीति से बनाई जाती थी। छोटे पन से वरन गर्भ से कन्या को दूध में वा भोजन में थोड़ा थोड़ा विष देते २ बड़ी होने पर उसका शरीर ऐसा विषमय हो जाता था कि जो उसका अङ्गसङ्ग करता, वह मर जाता।

अपने राज्य की ओर चला गया। इधर चाणक्य के सिखाये भद्र-भट इत्यादि चन्द्रगुप्त के कई बड़े २ अधिकारी प्रगट में राजद्रोही बन कर मलयकेतु और भागुरायण के साथ ही भाग गये।

राक्षस ने मलयकेतु से पर्वतक के मारे जाने का समाचार सुन कर अत्यन्त सोच किया और बड़े आग्रह और सावधानी से चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्टसाधन मे प्रवृत्त हुआ।

चाणक्य ने कुसुमपुर में दूसरे दिन यह प्रसिद्ध कर दिया कि पर्वतक और चन्द्रगुप्त दोनो समान बन्धु थे, इससे राक्षस ने विषकन्या भेज कर पर्वतक को मार डाला और नगर के लोगों के चित्त पर, जिनको यह सब गुप्त अनुसन्धि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।

इसके पीछे चाणक्य और राक्षस के परस्पर नीति को जो चोटें चली हैं उसी का इस नाटक मे वर्णन है।

महाकवि विशाखदत्त का बनाया

# मुद्रा-राक्षस नाटक

## स्थान रङ्गभूमि

( रंगशाला में नान्दी मङ्गलपाठ करता है। )

भरित नेह-नव-नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥ १ ॥*

'कौन है सीसपै' 'चन्द्रकला' कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी।
'हाँ यही नाम है भूल गई' किमि जानत हू तुम प्रान पियारी॥'
'नारिहि पूछत चन्द्रहिं नाहिं कहै बिजया जदि चन्द्र लबारी'।
यों गिरिजै छलि गंग छिपावत ईस हरौ सब पीर तुम्हारी॥ २ ॥
पाद प्रहार सों जाइ पताल न भूमि सबै तनु बोझ के मारे।
हाथ नचाइबे सों नभ में इत के उत टूटि परैं नहि तारे॥
देखन सों जरि जाहिं न लोक न खोलत नैन कृपा उर धारे।
यों थलके बिनु कष्ट सों नाचत शर्व हरौ दुःख सर्व तुम्हारे॥ ३ ॥

---

* संस्कृत का मंगलाचरणः—

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला, किन्नु नामैतदस्या.
नामैवास्यास्तदेतत्, परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः॥
नारीं पृच्छामि नेन्दुं; कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु-
र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः॥१॥

नान्दी पाठ के अनन्तर*

सूत्रधार—बस ! बहुत मत बढ़ाओ, सुनो, आज मुझे सभासदो की आज्ञा है कि सामन्त बटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त कवि का बनाया मुद्रा-राक्षस

---

और भी

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने—रक्षतः स्वैरपातै-
संस्कोचेनैव दोष्णा मुहुरभिनयत. सर्व्वलोकातिगानाम् ।
दृष्टिं लक्ष्येषु नोग्रा ज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते-
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिन. पातु वो दु खनृत्तम् ॥२॥

अर्थ ।

'यह आप के सिर पर कौन बड़भागिनी है ?' 'शशि कला है ।' 'क्या इसका यही नाम है !' हा यही तो, तुम तो जानती हो फिर क्यों भूल गई ?' 'अजी हम स्त्री को पूछती है, चन्द्रमा को नही पूछती' 'अच्छा चन्द्र की बात का विश्वास न हो तो अपनी सखी विजया से पूछ लो ।' यों ही बात बनाकर गगा जी को छिपा कर देवी पार्वती को ठगने की इच्छा करने वाले महादेव जी का छल तुम लोगों की रक्षा करे ।

दूसरा ।

पृथ्वी झुकने के डर से इच्छानुसार पैर का बोझ नहीं दे सकते, ऊपर के लोकों के इधर उधर हो जाने के भय से हाथ भी यथेच्छ नही फेंक सकते, और उसके अग्निकण से जल जायगे इसी ध्यान से किसी की ओर भर दृष्टि देख भी नही सकते, इसमे आधार के संकोच से महादेव जी का कष्ट से नृत्य करना तुम्हारी रक्षा करे ।

* नाटकों मे पहले मंगलाचरण करके तब खेल आरम्भ करते हैं । इस मंगलाचरण को नाटकशास्त्र में नान्दी कहते हैं । किसी का मत है कि नान्दी पहले ब्राह्मण पढता है, कोई कहता है सूत्रधार ही और किसी का मत है कि परदे के भीतर से नान्दी पढ़ी या गायी जाय ।

नाटक खेलो। सच है, जो सभा काव्य के गुण और दोष को सब भांति समझती है उसके सामने खेलने में मेरा भी चित्त संतुष्ट होता है।

उपजैं आछे खेत मे, मूरखहू के धान।
सघन होन मे धान के, चहिय न गुनी किसान॥ ४॥

तो अब मै घर से सुघर घरनी को बुला कर कुछ गाने बजाने का ढङ्ग जमाऊं (घूम कर) यही मेरा घर है, चलूं। (आगे बढ़ कर) अहा! आज तो मेरे घर मे कोई उत्सव जान पड़ता है, क्योकि घर वाले सब अपने अपने काम मे चूर हो रहे है।

पीसत कोऊ सुगन्ध कोऊ जल भरि कै लावत।
कोऊ बैठि कै रंग रंग की माल बनावत॥
कहुँ तिय गन हुंकार सहित अति श्रवन सोहावत।
होत मुशल को शब्द-सुखद जियको सुनि भावत॥ ५॥

जो हो घर से स्त्री को बुला कर पूछ लेता हूं (नेपथ्य की ओर)

री गुनवारी सब उपाय की जाननवारी।
घर की राखनवारी सब कुछ साधनवारी॥
मो गृह नीति स्वरूप काज सब करन सँवारी।
बेगि आउ री नटी बिलम्ब न करु सुनि प्यारी॥ ६॥

(नटी आती है)

नटी—आर्य्यपुत्र! * मैं आई, अनुग्रहपूर्वक कुछ आज्ञा दीजिये।

सूत्र०—प्यारी, आज्ञा पीछे दी जायगी, पहिले यह बता कि आज ब्राह्मणों का न्योता करके तुमने इस कुटुम्ब के लोगों पर क्यों

* संस्कृत मुहाविरे में पति को स्त्रियां आर्य्यपुत्र कह कर पुकारती हैं।

अनुग्रह किया है ? या आप ही से आज अतिथि लोगों ने कृपा की है कि ऐसे धूम से रसोई चढ़ रही है ?

नटी—आर्य्य ! मैंने ब्राह्मणों को न्यौता दिया है।

सूत्र०—क्यों ? किस निमित्त से ?

नटी—चन्द्र ग्रहण लगने वाला है।

सूत्र०—कौन कहता है ?

नटी—नगर के लोगों के मुंह सुना है।

सूत्र०—प्यारी ! मैंने ज्योतिः शास्त्र के चौसठों * अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो, रसोई तो होने दो † पर आज तो ग्रहन है यह तो किसी ने तुझे धोखा ही दिया है क्योंकि—

चन्द्र ‡ बिम्ब पूरन भए क्रूरकेतु ¶ हठ दाप।

---

* होरा मुहूर्त्त ताजक जातक रमल इत्यादि।

† अर्थात् ग्रहण का योग तो कदापि नहीं है। खैर रसोई हो।

‡ केतु अर्थात् राक्षस मन्त्री। राक्षस मन्त्री ब्राह्मण था और केवल नाम उसका राक्षस था किन्तु गुण उसमें देवताओं के थे।

¶ इस श्लोक का यथार्थ तात्पर्य्य जानने को काशी संस्कृत विद्यालय के अध्यक्ष जगद्विख्यात पण्डितवर बापूदेव शास्त्री को मैंने पत्र लिखा। क्योंकि टीकाकारों ने 'चन्द्रमा पूर्ण होने पर' यही अर्थ किया है और इस अर्थ से मेरा जी नहीं भरा। कारण यह कि पूर्णचन्द्र में तो ग्रहण लगता ही है इसमें विशेष क्या हुआ। शास्त्री जी ने जो उत्तर दिया है वह यहां प्रकाशित होता है।

श्रीयुत बाबू साहिब को बापूदेव का कोटिशः आशीर्वाद, आपने प्रश्न लिख भेजे उनका संक्षेप से उत्तर लिखता हूं।

बल सों करि हैं ग्रास कह—

( नेपथ्य में )

हैं ! मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र०— जेहि बुध रच्छत आप ॥७॥

१ सूर्य्य के अस्त हो जाने पर जो रात्रि में अंधकार होता है यही पृथ्वी की छाया है और पृथ्वी गोलाकार है और सूर्य्य से छोटी है इसलिये उसकी छाया सूच्याकार ( शकु के आकार ) की होती है और यह आकाश में चन्द्र के भ्रमणमार्ग को लांघ के बहुत दूर तक सदा सूर्य्य से छः राशि के अन्तर पर रहती है और पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा भी सूर्य्य से छः राशि के अन्तर पर रहता है । इसलिए जिस पूर्णिमा में चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है अर्थात् पृथ्वी की छाया चन्द्रमा के विम्ब पर पड़ती है तभी वह चन्द्र का ग्रहण कहलाता है और छाया जो चन्द्रबिम्ब पर देख पड़ती है वही ग्रास कहलाता है । और राहु नामक एक दैत्य प्रसिद्ध है वह चन्द्र ग्रहणकाल में पृथ्वी की छाया में प्रवेश करके चन्द्र को और प्रजा को पीड़ा देता है, इसी कारण से लोक में राहुकृत ग्रहण कहलाता है और उस काल में स्नान, दान, जप, होम इत्यादि करने से वह राहुकृत पीड़ा दूर होती है और बहुत पुण्य होता है ।

२ पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण होने का कारण ऊपर लिखा ही है और पूर्णिमा में चन्द्रबिम्ब भी सम्पूर्ण उज्ज्वल होता है तभी चन्द्रग्रहण होता है।

३ जब कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण होता है, इससे पूर्णिमा में चन्द्रमा का और बुध का योग कभी नहीं होता ( क्योंकि बुध सर्वदा सूर्य्य के पास रहता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य्य चन्द्रमा से छः राशि के अन्तर पर रहता है, इसलिये बुध भी उस दिन चन्द्र से दूर ही रहता है ) यों बुध के योग में चन्द्रग्रहण कभी नहीं हो सकता । इति शिवम् । संवत् १९३७ ज्येष्ठ शुक्ल १५ मंगल दिने, मंगलं-मंगले भूयात् ।

नटी—आर्य्य ! यह पृथ्वी ही पर से चन्द्रमा को कौन बचाना चाहता है ?

सूत्र०—प्यारी मैंने भी नहीं लखा, देखो, अब फिर से वही पढ़ता हूं और अब जब वह फिर बोलेगा तो मैं उस की बोली से पहिचान लूंगा कि कौन है ।

---

शास्त्री जी से एक दिन मुझे इस विषय मे फिर वार्त्ता हुई । शास्त्री जी को मैने मुद्रा-राक्षस की पुस्तक भी दिखलायी । इस पर शास्त्री जी ने कहा कि मुझ को ऐसा मालूम होता है कि यदि उस दिन उपराग का सम्भव होगा तो सूर्य्यग्रहण का होगा । क्योंकि बुधयोग अमावस्या के पास होता भी है । पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि राहु चन्द्रमा का ग्रास करता है और केतु सूर्य्य का, और इस श्लोक में केतु का नाम भी है इससे भी सम्भव होता है कि सूर्य्यउपराग रहा हो । तो चाणक्य का कहना भी ठीक हुआ कि केतु हठपूर्व्वक क्यों चन्द्र को ग्रसा चाहता है अर्थात् एक तो चन्द्रग्रहण का दिन नही दूसरे केतु का चन्द्रमा ग्रास का विषय नही क्योंकि नन्द-वीर्य्यजात होने से चन्द्रगुप्त राक्षस का बध्य नही है। इस अवस्था में 'चन्द्रम असम्पूर्ण मण्डल' चन्द्रमा का अधूरा मण्डल यह अर्थ करना पड़ेगा । तब छन्द में 'चन्द बिम्ब पूरन भए' के स्थान पर 'बिना चन्द्र पूरन भए' पढ़ना चाहिए।

बुध का बिम्ब प्राचीन भास्कराचार्य्य के मतानुसार छ· कला पन्द्रह बिकला के लगभग है। परन्तु नवीनों के मत से केवल दश विकला परम है।

परन्तु इसमें कुछ सन्देह नही कि यह ग्रह बहुत छोटा है क्योंकि प्राचीनों को इसका ज्ञान बहुत कठिनता से हुआ है, इसीलिए इसका नाम ही बुध, ज्ञ, इत्यादि हो गया । यह पृथ्वी से ६८६३७७ इतने योजन की दूरी पर मध्यम मान से रहता हैं और सदा सूर्य्य के अनुचर के समान सूर्य्य के पास ही रहता है एक पाद अर्थात् तीन राशि भी सूर्य्य से आगे

( अहो चन्द्र पूरन भए फिर से पढता है )

( नेपथ्य में )

हैं ! मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र०—( सुन कर ) जाना !

अरे अहै कौटिल्य

नटी—( डर नाट्य करती है )

---

नहीं जाता। विल्सन ने केतु शब्द से मलयकेतु का ग्रहण किया है। इसमें भी एक प्रकार का अलकार अच्छा रहता है।

चमत्कृत बुद्धिसम्पन्न पण्डित सुधाकर जी ने इस विषय में जो लिखा है, वह विचित्र ही है। वह भी प्रकाश किया जाता है—

करत अधिक अँधियार वह, मिल मिल करि हरिचन्द ।
द्विजराजहु विकसित करत, धनि धनि यह हरिचन्द ॥

श्री बाबू साहब को हमारे अनेक आशीर्वाद,

महाशय !

चन्द्रग्रहण का सम्भव भूछाया के कारण प्रति पूर्णिमा के अन्त में होता है और उस समय में केतु और सूर्य्य साथ रहते हैं। परन्तु केतु और सूर्य्य का योग यदि नियत सख्या के अर्थात् पांच राशि सोरह अंश से लेकर छः राशि चौदह अंश के वा ग्यारह राशि सोरह अश से लेकर बारह राशि चौदह अंश के भीतर होता है तब ग्रहण होता है और यदि योग नियत संख्या के बाहर पड जाता है तब ग्रहण नही होता इसलिये सूर्य्य केतु के योग ही के कारण से प्रत्येक पूर्णिमा में ग्रहण नही होता। तब

क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम् ।
अभिभवतुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोग ॥

इस श्लोक का यथार्थ अर्थ यह है कि क्रूरग्रह सूर्य्य केतु के साथ चन्द्रमा के पूर्णमण्डल को न्यून करने की इच्छा करता है परन्तु हे बुध !

सूत्र०— दुष्ट टेढ़ी मतिवारो

नन्दवंश जिन सहजहि निज क्रोधानल जारो।

चन्द्रग्रहण को नाम सुनत निज नृप को मानी॥

इतही आवत चन्द्रगुप्त पै कछु भय जानी॥८॥

तो अब चलो हम लोग चलें।

( दोनों जाते हैं )

इति प्रस्तावना।

---

योग जो है वही बल से उस चन्द्रमा की रक्षा करता है। यहां बुध शब्द पण्डित के अर्थ में सम्बोधन है, ग्रहवाची कदापि नहीं है। बु ग शब्द को ग्र हार्थं में ले जाने से जो जो अर्थं होते हैं वे सब बनौआ है। इति।

स० १६३७ वैशाख शुक्ल ५

ऊंचे ह्वै गुरु बुध कवी, मिलि लरि होत विरूप।
करत समागम सबहिं सों, यह द्विजराज अनूप॥

आपका

पं० सुधाकर।

# प्रथम अंक

स्थान—चाणक्य का घर

( अपनी खुली शिखा को हाथ मे फटकारता हुआ चाणक्य आता है )

चाणक्य—बता ! कौन है जो मेरे जीते चन्द्रगुप्त को बल से ग्रसना चाहता है।

सदा दन्ति * के कुम्भ † को जो बिदारै।
ललाई नए चन्द सी जौन धारै ॥
जंभाई समै काल सो जौन बाढ़ै।
भलो सिंह को दाँत सो कौन काढ़ै ॥ ९ ॥

और भी

कालसर्पिणी नन्दकुल, क्रोध धूम सी जौन।
अबहूं बाँधन देत नहिं, अहो सिखा मम कौन ॥१०॥
दहन नन्दकुल बन सहज, अति प्रज्वलित प्रताप।
को मम क्रोधानल पतँग, भयो चहत अब आप ॥११॥

शारङ्गरव ! शारङ्गरव !!

( शिष्य आता है )

शिष्य—गुरू जी ! क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—बेटा ! मैं बैठना चाहता हूं।

शिष्य—महाराज ! इस दालान में बेंत की चटाई पहिले ही से बिछी है, आप विराजिये।

---

* हाथी। † मस्तक।

चाणक्य—बेटा! केवल कार्य्य मे तत्परता मुझे व्याकुल करती है न कि और उपाध्यायो के तुल्य शिष्यजन से दुःशीलता ❀ ( बैठ कर आपही आप ) क्या सब लोग यह बात जान गये कि मेरे † नन्दवंश के नाश से क्रुद्ध होकर राक्षस, पितावध से दुखी मलयकेतु ‡ से मिल कर यवनराज की सहायता लेकर चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई किया चाहता है। ( कुछ सोचकर ) क्या हुआ जब मैं नन्दवंश की बड़ी प्रतिज्ञा रूपी नदी से पार उतर चुका तब यह बात प्रकाश होने ही से क्या मैं इस को न पूरा कर सकूंगा? क्योंकिः—

दिसि सरिस रिपु—रमनी—बदन—शशि शोक कारिख लाय कै।
लै नीति—पवनहि सचिव—बिटपन छार डारि जराय कै॥
बिनु पुर—निवासी—पच्छिगन—नृप—बंसमूल नसाय कै।
भइ शांति मम क्रोधाग्नि यह कछु दहन हित नहिं पायकै¶॥१२॥

और भी

जिन जनन नैं अति सोच सों नृप—भय प्रगट धिक् नहिं कह्यौ।
पै मम अनादर को अतिहि वह सोच जिय जिन के रह्यौ॥
ते लखहिं आसन सों गिरायो नन्द सहित समाज को।
जिमि शिखर ते बनराज क्रोधि गिराबई गजराज को॥१३॥

---

❀ अर्थात् कुछ तुम लोगों पर दुष्टता से नहीं अनेक काम की घबडाहट से बिछी हुई चटाई नहीं देखी।

† नन्दवंश अर्थात् नव नन्द, एक नन्द और उसके आठ पुत्र।

‡ पर्वतेश्वर राजा का पुत्र।

¶ अग्नि बिना आधार नहीं जलती।

× नन्द ने कुरूप होने के कारण चाणक्य को अपने श्राद्ध से निकाल दिया था।

सो यद्यपि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूं, तो भी चन्द्रगुप्त के हेतु शस्त्र अब भी धारण करता हूं। देखो मैंने—

नवनन्दन कौं मूल सहित खोयो छन भर मे।
चन्द्रगुप्त में श्री राखो नलिनी जिमि सर मे॥
क्रोध प्रीति सो एक नासि कै एक बसायो।
शत्रु मित्र को प्रगट सबन फल लै दिखलायो॥१४॥

अथवा जब तक राक्षस नही पकड़ा जाता तब तक नन्दो के मारने से क्या और चन्द्रगुप्त को राज्य मिलने से ही क्या? (कुछ सोच कर) अहा! राक्षस को नन्दवंश से कैसी दृढ़ भक्ति है! जब तक नन्दवंश का कोई भी जीता रहेगा तब तक वह कभी शूद्र का मन्त्री बनना स्वीकार न करेगा इस से उस के पकड़ने मे हम लोगों को निरुद्यम रहना अच्छा नही। यही समझ कर तो नन्दवश का सर्वार्थसिद्धि बिचारा तपोवन मे चला गया तौ भी हम ने मार डाला। देखो रासक्ष मलयकेतु को मिला कर हमारे बिगाड़ने में यत्न करता ही जाता है (आकाश में देख कर) वाह राक्षस मन्त्री वाह! क्यो न हो! वाह मन्त्रियो में वृहस्पति के समान वाह! तू धन्य है क्योंकि:—

जब लौ रहै सुख राज को तब लौं सबै सेवा करैं।
पुनि राज बिगड़े कौन स्वामी तनिक नहि चित मे धरैं।
जे बिपतिहू मे पालि पूरब प्रीति काज सँवारहीं।
ते धन्य नर तुम सारिखे दुरलभ अहै संसय नही॥१५॥

इसी से तो हम लोग इतना यत्न कर के तुम्हे मिलाया चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चन्द्रगुप्त के मन्त्री बनो, क्योंकि—

मूरख कातर स्वामिभक्ति कछु काम न आवै।
पण्डित हू बिन भक्ति काज कछु नाहिं बनावै॥

निज स्वारथ की प्रीति करैं ते सब जिमि नारी।
बुद्धि भक्ति दोउ होय तबै सेवक सुखकारी ॥१६॥

सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूं, यथाशक्ति उसी के मिलाने का यत्न करता रहता हूं। देखो, पर्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्योंकि सब जानते है कि चन्द्रगुप्त और पर्वतक मेरे मित्र हैं तो मैं पर्वतक को मार कर चन्द्रगुप्त का पक्ष निर्बल कर दूंगा ऐसी शंका कोई न करेगा, सब यही कहेंगे कि राक्षस ने विषकन्या-प्रयोग कर के चाणक्य के मित्र पर्वतक को मार डाला। पर एकान्त में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया है कि तेरे पिता को मैंने नहीं मारा चाणक्य ही न मारा, इस से मलयकेतु मुझ से बिगड़ रहा है। जो हो, यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तो भी पकड़ा जायगा। पर जो हम मलयकेतु को पकड़ेंगे तो लोग निश्चय कर लेंगे कि अवश्य चाणक्य ही ने अपने मित्र इसके पिता को मारा और अब मित्रपुत्र अर्थात् मलयकेतु को मारना चाहता है। और भी, अनेक देश की भाषा पहिरावा चाल व्यवहार जानने वाले अनेक वेषधारी बहुत से दूत मैंने इसी हेतु चारो ओर भेज रक्खे हैं कि वे भेद लेते रहे कि कौन हम लोगो से शत्रुता रखता है कौन मित्र है। और कुसुमपुर निवासी नन्द के मन्त्री और सम्बन्धियों के ठीक ठीक वृत्तान्त का अन्वेषण हो रहा है, वैसे ही भद्रभटादिको को बड़े बड़े पद देकर चन्द्रगुप्त के पास रख दिया है और भक्ति की परीक्षा लेकर बहुत से अप्रमादी पुरुष भी शत्रु से रक्षा करने को नियत कर दिए हैं। वैसे ही मेरा सहपाठी मित्र विष्णुशर्म्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्रनीति और चौसठों कला से ज्योतिष शास्त्र में बड़ा प्रवीण है, उसे मैंने पहिले ही योगी बना कर नन्दवध की प्रतिज्ञा के अनन्तर

ही कुसुमपुर में भेज दिया है, वह वहां नन्द के मन्त्रियों से मित्रता, विशेष कर के राक्षस का अपने पर बड़ा विश्वास बढ़ा कर सब काम सिद्ध करेगा, इस से मेरा सब काम बन गया है, परन्तु चन्द्रगुप्त सब राज्य का भार मेरे ही ऊपर रख कर सुख करता है। सच है, जो अपने बल बिना और अनेक दुःखों के भोगे बिना राज्य मिलता है वही सुख देता है। क्योंकिः—

अपने बल सों लावही, यद्यपि मारि सिकार।
तदपि सुखी नहिं होत हैं, राजा सिंह कुमार ॥१७॥

(* यम का चित्र हाथ में लिये योगी का वेष धारण किये दूत आता है)

दूत—अरे, और देव को काम नहिं, जम को करो प्रनाम।
जो दूजन के भक्त को, प्रान हरत परिनाम ॥१८॥

और

उलटेतेहूं बनत हैं, काज किये अति हेत।
जो जम जी सब को हरत, सोइ जीविका देत ॥१९॥

तो इस घर में चल कर जमघट दिखा कर गावें।

(घूमता है)

शिष्य—रावल जी! ड्योढ़ी के भीतर न जाना।

दूत—अरे ब्राह्मण! यह किस का घर है?

शिष्य—हम लोगों के परम प्रसिद्ध गुरु चाणक्य जी का।

दूत—(हंस कर) अरे ब्राह्मण! तब तो यह मेरे गुरु-भाई ही का घर है, मुझे भीतर जाने दे, मैं उस को धर्मोपदेश करूंगा।

---

* उस काल में एक चाल के फकीर जम का चित्र दिखलाकर संसार की अनित्यता के गीत गाकर भीख मांगते थे।

शिष्य—( क्रोध से ) छिः मूर्ख ! क्या तू गुरु जी से भी धर्म्म विशेष जानता है ?

दूत—अरे ब्राह्मण ! क्रोध मत कर, सभी सब कुछ नहीं जानते कुछ तेरा गुरु जानता है, कुछ मेरे से लोग जानते हैं।

शिष्य—( क्रोध से ) मूर्ख ! क्या तेरे कहने से गुरु जी की सर्वज्ञता उड़ जायगी ?

दूत—भला ब्राह्मण ! जो तेरा गुरु सब जानता है तो बतलावे कि चन्द्र किस को नही अच्छा लगता ?

शिष्य—मूर्ख ! इस को जानने से गुरु को क्या काम ?

दूत—यही तो कहता हूं कि यह तेरा गुरु ही समझेगा कि इस के जानने से क्या होता है ? तू तो सूधा मनुष्य है, तू केवल इतना ही जानता है कि कमल को चन्द्र प्यारा नही है। देख—

जदपि होत सुन्दर कमल, उलटो तदपि सुभाव।
जो नित पूरन चन्द सों, करत बिरोध बनाव ॥२०॥

चाणक्य—( सुन कर आप ही आप ) अहा ! "मैं चन्द्रगुप्त के बैरियों को जानता हूं" यह कोई गूढ़ वचन से कहता है।

शिष्य—चल मूर्ख ! क्या बेठिकाने की बकवाद कर रहा है।

दूत—अरे ब्राह्मण ! यह सब ठिकाने की बातें होंगी।

शिष्य—कैसे होंगी ?

दूत—जो कोई सुननेवाला और समझनेवाला होय।

चाणक्य—रावल जी ! बेखटके चले आइये, यहाँ आपको सुनने और समझने वाले मिलेंगे।

दूत—आया ( आगे बढ़ कर ) जय हो महाराज की।

चाणक्य—( देख कर आप ही आप ) कामों की भीड़ से यह नहीं निश्चय होता कि निपुणक को किस बात के जानने के लिये भेजा था। अरे जाना, इसे लोगों के जी का भेद लेने को भेजा था ( प्रकाश ) आओ, कहो, अच्छे हो ? बैठो।

दूत—जो आज्ञा ( भूमि मे बैठता है )।

चाणक्य—कहो, जिस काम को गये थे उसका क्या किया ? चन्द्रगुप्त को लोग चाहते है कि नही ?

दूत—महाराज ! आप ने पहिले ही से ऐसा प्रबन्ध किया है कि कोई चन्द्रगुप्त से विराग न करे, इस हेतु सारी प्रजा महाराज चन्द्रगुप्त में अनुरक्त है, पर राक्षस मन्त्री के दृढ़ मित्र तीन ऐसे है जो चन्द्रगुप्त की वृद्धि नही सह सकते।

चाणक्य—( क्रोध से ) अरे ! कह, कौन अपना जीवन नहीं सह सकते, उन के नाम तू जानता है ?

दूत—जो नाम न जानता तो आप के सामने क्यो कर निवेदन करता ?

चाणक्य—मै सुना चाहता हूं कि उन के क्या नाम है ?

दूत—महाराज सुनिये। पहिले तो शत्रु का पक्षपात करने वाला क्षपणक है।

चाणक्य—( हर्ष से आप ही आप ) हमारे शत्रुओ का पक्षपाती क्षपणक है ? ( प्रकाश ) उस का नाम क्या है।

दूत—जीवसिद्धि नाम है।

चाणक्य—तू ने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे शत्रुओं का पक्षपाती है ?

दूत—क्योंकि उस ने राक्षस मन्त्री के कहने से देव पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग किया।

चाणक्य—( आप ही आप ) जीवसिद्धि तो हमारा गुप्त दूत है ( प्रकाश ) हां और कौन है ?

दूत—महाराज ! दूसरा राक्षस मन्त्री का प्यारा सखा शकटदास कायथ है।

चाणक्य—( हंस कर आप ही आप ) कायथ कोई बड़ी बात नहीं है तो भी क्षुद्र शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, इसी हेतु तो मैंने सिद्धार्थक को उस का मित्र बना कर उस के पास रक्खा है, ( प्रकाश ) हां, तीसरा कौन है।

दूत—( हंस कर ) तीसरा तो राक्षस मन्त्री का मानो हृदय ही पुष्पपुरवासी चन्दनदास नामक वह बड़ा जौहरी है जिस के घर मे मन्त्री राक्षस अपना कुटुम्ब छोड़ गया है।

चाणक्य—( आप ही आप ) अरे यह उस का बड़ा अन्तरंग मित्र होगा क्योंकि पूरे विश्वास बिना राक्षस अपना कुटुम्ब यों न छोड़ जाता ( प्रकाश ) भला तूने यह कैसे जाना कि राक्षस मन्त्री वहां अपना कुटुम्ब छोड़ गया ?

दूत—महाराज ! इस "मोहर" की अंगूठी से आप को विश्वास होगा ( अंगूठी देता है )।

चाणक्य—( अंगूठी लेकर और उस में राक्षस का नाम बाच कर प्रसन्न हो कर आप ही आप ) आह ! मैं समझता हूं कि राक्षस ही मेरे हाथ लगा ( प्रकाश ) भला तुम ने यह अंगूठी कैसे पाई ? मुझ से सब वृत्तान्त तो कहो।

दूत—सुनिये। जब मुझे आप ने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा तब मैंने यह सोचा कि बिना भेस बदले मैं दूसरे के

घर मे न घुसने पाऊँगा, इस से मैं जोगी का भेस कर के जमराज का चित्र हाथ में लिये फिरता फिरता चन्दनदास जौहरी के घर मे चला गया और वहाँ चित्र फला कर गीत गाने लगा।

चाणक्य—हाँ, तब ?

दूत—तब महाराज ! कौतुक देखने को एक पांच बरस का बड़ा सुन्दर बालक एक परदे के आड़ से बाहर निकला उस समय परदे के भीतर स्त्रियो में बड़ा कलकल हुआ कि "लड़का कहाँ गया" इतने मे एक स्त्री ने द्वार के बाहर मुख निकाल कर देखा और लड़के को झट पकड़ ले गई, पर पुरुष की उँगली से स्त्री की उँगली पतली होती है, इस से द्वार ही पर यह अंगूठी गिर पड़ी और मैं उस पर राक्षस मन्त्री का नाम देख कर आप के पास उठा लाया ।

चाणक्य—वाह वाह ! क्यो न हो, अच्छा जाओ, मैं ने सब सुन लिया ! तुम्हे इस का फल शीघ्र ही मिलेगा ।

दूत—जो आज्ञा ( जाता है )।

चाणक्य—शारंगरव ! शारंगरव !

शिष्य—( आकर ) आज्ञा, गुरुजी ?

चाणक्य—बेटा ! कलम दावात काग़ज़ तो लाओ।

शिष्य—जो आज्ञा ( बाहर जाकर ले आता है ) गुरू जी ! ले आया।

चाणक्य—( लेकर आप ही आप ) क्या लिखूँ, इसी पत्र से राक्षस को जीतना है।

( प्रतिहारी आती है )

प्रतिहारी—जय हो महाराज की जय हो।

चाणक्य—( हर्ष से आप ही आप ) वाह वाह कैसा सगुन हुआ कि कार्य्यारम्भ मे ही जय शब्द सुनाई पड़ा।

( प्रकाश ) कहो शोणोत्तरा क्यों आई हो ?

प्र०—महाराज ! राजा चन्द्रगुप्त ने प्रणाम कहा है और पूछा है कि मै पर्व्वतेश्वर की क्रिया किया चाहता हूँ इससे आप की आज्ञा हो तो उनके पहिरे आभरणो को पण्डित ब्राह्मणो को दूं।

चाणक्य—( हर्ष से आप ही आप ) वाह चन्द्रगुप्त वाह, क्यों न हो, मेरे जी की बात सोच कर सँदेशा कहला भेजा है ( प्रकाश ) शोणोत्तरा ! चन्द्रगुप्त से कहो कि "वाह ! बेटा वाह ! क्यो न हो बहुत अच्छा विचार किया, तुम व्यवहार मे बड़े ही चतुर हो इससे जो सोचा है सो करो, पर पर्व्वतेश्वर के पहिरे हुए आभरण गुणवान ब्राह्मणो को देने चाहिए, इस से ब्राह्मण मैं चुन के भेजूँगा।"

प्र०—जो आज्ञा महाराज ! ( जाती है )।

चाणक्य—शारङ्गरव ! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कहो कि जा कर चन्द्रगुप्त से आभरण ले कर मुझ से मिलें।

शिष्य—जो आज्ञा ( जाता है )।

चाणक्य—( आप ही आप ) पीछे तो यह लिखें पर पहिले क्या लिखें ( सोच कर ) अहा ! दूतो के मुख से ज्ञात हुआ है कि उस म्लेछराज सेना मे से प्रधान पांच राजा परम भक्ति से राक्षस की सेवा करते हैं।

प्रथम चित्रवर्म्मा कुलूत को राजा भारी।
मलय देशपति सिंहनाद दूजो बलधारी ॥
तीजो पुसकरनयन अहै कश्मीर देश को।
सिन्धुसेन पुनि सिन्धु नृपति अति उग्र भेष को॥

मेघाक्ष पांचवों प्रबल अति; बहु हय जुत पारस नृपति।
अब चित्रगुप्त इन नाम को मेटहिं हम जब लिखहि हति* ॥

(कुछ सोच कर) अथवा न लिखूँ अभी सब बात यों ही रहे (प्रकाश) शारंगरव! शारंगरव ॥

शिष्य—(आकर) आज्ञा गुरूजी!

चाणक्य—बेटा! वैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखें तो भी उनके अक्षर अच्छे नहीं होते इससे सिद्धार्थक से कहो (कान में कह कर) कि वह शकटदास के पास जाकर यह सब बात यों लिखवा कर और "किसी का लिखा कुछ कोई आप ही बांचे" यह सरनामे पर नाम बिना लिखवा कर हमारे पास आवे और शकटदास से यह न कहे कि चाणक्य ने लिखवाया है।

शिष्य—जो आज्ञा (जाता है)।

चाणक्य—(आप ही आप) अहा! मलयकेतु को तो जीत लिया।

(चिट्ठी लेकर सिद्धार्थक आता है)

सि०—जय हो, महाराज की जय हो। महारज! यह शकटदास के हाथ का लेख है।

---

* अर्थात अब जब हम इनका नाम लिखते हैं तो निश्चय ये सब मरेंगे, इससे अब चित्रगुप्त अपने खाते से इनका नाम काट दें, न ये जीते रहेंगे न चित्रगुप्त को लेखा रखना पड़ेगा।

चाणक्य—( लेकर देखता है ) वाह कैसे सुन्दर अक्षर हैं! ( पढ़कर ) बेटा, इस पर यह मोहर कर दो।

सि०—जो आज्ञा ( मोहर करके ) महाराज, इस पर मोहर हो गई, अब और कहिये क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—बेटा जी ! हम तुम्हें एक अपने निज के काम में भेजा चाहते हैं।

सि०—( हर्ष से ) महाराज, यह तो आपकी कृपा है, कहिये, यह दास आपके कौन काम आ सकता है ?

चाणक्य—सुनो, पहिले जहाँ सूली दी जाती है वहाँ जाकर फाँसी देने वालो को दाहिनी आँख दबा कर समझा देना* और जब वे तेरी बात समझ कर डर से इधर उधर भाग जायँ तब तुम शकटदास को लेकर राक्षस मन्त्री के पास चले जाना। वह अपने मित्र के प्राण बचाने से तुम पर बड़ा प्रसन्न होगा और तुम्हे पारितोषिक देगा, तुम उसको लेकर कुछ दिनों तक राक्षस ही के पास रहना और जब और भी लोग पहुँच जायँ तब यह काम करना ( कान में समाचार कहता है )।

सि०—जो आज्ञा महाराज।

चाणक्य—शारंगरव ! शारंगरव !

शिष्य—( आकर ) आज्ञा गुरुजी ?

चाणक्य—कालपाशिक और दण्डपाशिक से यह कह दो कि चन्द्रगुप्त आज्ञा करता है कि जीवसिद्धि क्षपणक ने राक्षस के कहने से विषकन्या का प्रयोग करके

---

* चाण्डालों को पहले से समझा दिया था कि जो आदमी दाहिनी आंख दबाये उसको हमारा मनुष्य समझ कर तुम चटपट हट जाना।

पर्वतेश्वर को मार डाला, यही दोष प्रसिद्ध करके अपमान-पूर्वक उसको नगर से निकाल दें।

शिष्य—जो आज्ञा ( घूमता है )

चाणक्य—बेटा ! ठहर-सुन, और वह जो शकटदास कायस्थ है वह राक्षस के कहने से नित्य हम लोगों की बुराई करता है, यही दोष प्रगट करके उसको सूली दे दें और उसके कुटुम्ब को कारागार में भेज दें।

शिष्य—जो आज्ञा महाराज ! ( जाता है )।

चाणक्य—( चिन्ता करके आप ही आप ) हा ! क्या किसी भाँति यह दुरात्मा राक्षस पकड़ा जायगा ?

सि०—महाराज ! लिया।

चाणक्य—( हर्ष से आप ही आप ) अहा ! क्या राक्षस को ले लिया ? ( प्रकाश ) कहो, क्या पाया ?

सि०—महाराज ! आपने जो संदेशा कहा वह मैंने भली भाँति समझ लिया, अब काम पूरा करने जाता हूँ।

चाणक्य—( मोहर और पत्र देकर ) सिद्धार्थक ! जा तेरा काम सिद्ध हो।

सि०—जा आज्ञा ( प्रणाम करके जाता है )

शिष्य—( आकर ) गुरूजी, कालपाशिक दंडपाशिक आप से निवेदन करते हैं कि महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा पूर्ण करने जाते हैं।

चाणक्य—अच्छा, बेटा ! मैं चन्दनदास जौहरी को देखा चाहता हूं।

शिष्य—जो आज्ञा ( बाहर जाकर चदनदास को लेकर आता है ) इधर आइये सेठ जी !

चन्दन०—( आप ही आप ) यह चाणक्य ऐसा निर्दय है कि जो एकाएक किसी को बुलावे तो लोग बिना अपराध भी इससे डरते हैं, फिर कहाँ मैं इस का नित्य का अपराधी इसी से मैंने धनसेनादिक तीन महाजनों से कह दिया है कि दुष्ट चाणक्य जो मेरा घर लूट ले तो आश्चर्य नहीं, इससे स्वामी राक्षस का कुटुम्ब कहीं और ले जाओ, मेरी जो गति होनी है वह हो।

शिष्य—इधर आइये साह जी !

चन्दन०—आया ( दोनों घूमते हैं )।

चाणक्य—( देखकर ) आइये साह जी ! कहिये अच्छे तो है ? बैठिये यह आसन है।

चन्दन०—( प्रणाम करके ) महाराज ! आप नहीं जानते कि अनुचित सत्कार अनादर से भी विशेष दुःख का कारण होता है इससे मैं पृथ्वी ही पर बैठूंगा।

चाणक्य—वाह ! आप ऐसा न कहिए, आपको तो हम लोगों के साथ यह व्यवहार उचित ही है इससे आप आसन पर बैठिये।

चन्दन०—( आपही आप ) कोई बात तो इस दुष्ट ने जानी (प्रकाश) जो आज्ञा ( बैठता है )।

चाणक्य—कहिए साह जी ! चन्दनदास जी ! आपको व्यापार में लाभ तो होता है न ?

चन्दन०—महाराज, क्यों नहीं, आप की कृपा से सब बनज-व्यापार अच्छी भाँति चलता है।

चाणक्य—कहिए साह जी ! पुराने राजाओं के गुण चन्द्रगुप्त के दोषों को देख कर कभी लोगों को स्मरण आते हैं ?

चन्दन०—( कान पर हाथ रख कर ) राम ! राम ! शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की भांति शोभित चन्द्रगुप्त को देख कर कौन नहीं प्रसन्न होता ?

चाणक्य—जो प्रजा ऐसी प्रसन्न है तो राजा भी प्रजा से कुछ अपना भला चाहते हैं।

चन्दन०—महाराज ! जो आज्ञा, मुझ से कौन और कितनी वस्तु चाहते हैं ?

चाणक्य—सुनिये साह जो ! यह नन्द का राज नहीं है, चन्द्रगुप्त का राज्य है, धन से प्रसन्न होने वाला तो वह लालची नन्द ही था, चन्द्रगुप्त तो तुम्हारे ही भले से प्रसन्न होता है।

चन्दन०—( हर्ष से ) महाराज, यह तो आप की कृपा है।

चाणक्य—पर यह तो मुझसे पूछिये कि वह भला किस प्रकार से होगा ?

चन्दन०—कृपा कर के कहिये।

चाणक्य—सौ बात की एक बात यह है कि राजा के विरुद्ध कामों को छोड़ो।

चन्दन०—महाराज ! वह कौन अभागा है जिसे आप राजविरोधी समझते हैं ?

चाणक्य—उसमे पहिले तो तुम्ही हो।

चन्दन०—( कान पर हाथ रख कर ) राम ! राम ! राम ! भला तिनके से और अग्नि से कैसा विरोध।

चाणक्य—विरोध यही है कि तुम ने राजा के शत्रु राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब अब तक घर में रख छोड़ा है।

चन्दन०—महाराज ! यह किसी दुष्ट ने आप से झूँठ कह दिया है ।

चाणक्य—सेठ जी ! डरो मत, राजा के भय से पुराने राजा के सेवक लोग अपने मित्रों के पास बिना चाहे भी कुटुम्ब छोड़ कर भाग जाते हैं, इससे इसके छिपाने ही में दोष होगा ।

चन्दन०—महाराज ! ठीक है, पहिले मेरे घर पर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब था ।

चाणक्य—पहिले तो कहा कि किसी ने झूँठ कहा है। अब कहते हो, था, यह गबड़े की बात कैसी ?

चन्दन०—महाराज ! इतना ही मुझ से बातों में फेर पड़ गया ।

चाणक्य—सुनो, चन्द्रगुप्त के राज्य में छल का विचार नहीं होता, इससे राक्षस का कुटुम्ब दो, तो तुम सच्चे हो जाओगे ।

चन्दन०—महाराज ! मैं कहता हूँ न, पहिले राक्षस का कुटुम्ब था।

चाणक्य—तो अब कहाँ गया ?

चन्दन०—न जाने कहाँ गया ।

चाणक्य—( हँस कर ) सुनो सेठ जी ! तुम क्या नहीं जानते कि साँप तो सिर पर बूटी पहाड़ पर । और जैसा चाणक्य ने नन्द को ....( इतना कह कर लाज से चुप रह जाता है ) ।

चन्दन०—( आप ही आप )

प्रिया दूर घन गरजहीं, अहो दुःख अति घोर।
औषधि दूर हिमाद्रि पै, सिर पै सर्प कठोर॥

चाणक्य—चन्द्रगुप्त को अब राक्षस मन्त्री राज पर से उठादेगा यह आशा छोड़ो, क्योकि देखो—

नृप नन्द जीवत नीतिबल सों, मति रही जिन की भली।
ते "वक्रनासादिक" सचिव नहि, थिर सके करि नसि चली॥
सो श्री सिमिटि अब आय लिपटी, चन्द्रगुप्त नरेश सों।
तेहि दूर को करि सकै चाँदनि, छुटत कहुँ राकेस सो ?॥

और भी

"सदा दन्ति के कुम्भ को" इत्यादि फिर से पढ़ता है।

चन्दन०—( आप ही आप ) अब तुझ को सब कहना फबता है।

( नेपथ्य में ) हटो हटो—

चाणक्य—शारंगरव ! यह क्या कोलाहल है देख तो ?

शिष्य—जो आज्ञा ( बाहर जाकर फिर आकर ) महाराज राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा से राजद्वेषी जीवसिद्धि क्षपणक निरादर पूर्वक नगर से निकाला जाता है।

चाणक्य—क्षपणक ! हा ! हा ! अथवा राजविरोध का फल भोगे। सुनो चन्दनदास ! देखो राजा अपने द्वेषियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है, मै तुम्हारे भले की कहता हूं, सुनो, और राक्षस का कुटुम्ब देकर जन्म भर राजा की कृपा से सुख भोगो।

चन्दन०—महाराज ! मेरे घर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब नही है।

( नेपथ्य में कलकल होता है )

चाणक्य—शारंगव ! देख तो यह क्या कलकल होता है ?

शिष्य—जो आज्ञा ( बाहर जाकर फिर आता है ) महाराज ! राजा की आज्ञा से राजद्वेषी शकटदास कायस्थ को सूली देने ले जाते है।

चाणक्य—राजविरोध का फल भोगे। देखो सेठ जी ! राजा अपने विरोधियों को कैसा कड़ा दण्ड देता है, इस से राक्षस का कुटुम्ब छिपाना वह कभी न सहेगा; इसी से उसका कुटुम्ब देकर तुम को अपना प्राण और कुटुम्ब बचाना हो तो बचाओ।

चन्दन०—महाराज ! क्या आप मुझे डर दिखाते हैं, मेरे यहां अमात्य राक्षस का कुटुम्ब हई नहीं है; पर जो होता तो भी मैं न देता।

चाणक्य—क्या चन्दनदास ! तुम ने यही निश्चय किया है ?

चन्दन०—हां ! मै ने यही दृढ़ निश्चय किया है।

चाणक्य—( आप ही आप ) वाह चन्दनदास ! वाह ! क्यों न हो !

दूजे के हित प्राण दे, करै धर्म्म प्रतिपाल।
को ऐसो शिवि के बिना, दूजो है या काल ॥

(प्रकाश) क्या चन्दनदास, तुम ने यही निश्चय किया है ?

चन्दन०—हां ! हां ! मैंने यही निश्चय किया है।

चाणक्य—( क्रोध से ) दुरात्मा दुष्ट बनिया ! देख राजकोप का कैसा फल पाता है !

चन्दन०—( बाँह फैलाकर ) मैं प्रस्तुत हूँ, आप जो चाहिए अभी दण्ड दीजिए।

चाणक्य—( क्रोध से ) शारंगरव ! कालपाशिक, दण्डपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दण्ड दें। नहीं, ठहरो, दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इस

के घर का सारा धन ले लें और इस को, कुटुम्ब समेत पकड़ कर बाँध रक्खैं, तब तक मैं चन्द्रगुप्त से कहूं, वह आप ही इसके सर्वस्व और प्राण हरण की आज्ञा देगा।

शिष्य—जो आज्ञा महाराज। सेठ जी इधर आइये।

चन्दन०—लीजिए महाराज! यह मैं चला (उठकर चलता है) (आप ही आप) आहा! मैं धन्य हूं कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते है, अपने हेतु तो सभी मरते हैं।

(दोनों बाहर जाते हैं)

चाणक्य—(हर्ष से) अब ले लिया है राक्षस को, क्योंकि:—

जिमि इन तृन सम प्रान तजि, कियो मित्र को त्रान।
तिमि सोहू निज मित्र अरु, कुल रखि है दै प्रान॥

(नेपथ्य में कलकल)

चाणक्य—शारंगरव!

शिष्य—(आकर) आज्ञा गुरु जी?

चाणक्य—देख तो यह कैसी भीड़ है?

शिष्य—(बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर) महाराज! शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया।

चाणक्य—(आप ही आप) वाह सिद्धार्थक! काम का आरम्भ तो किया (प्रकाश) है क्या ले गया? (क्रोध से) बेटा! दौड़ कर भागुरायण से कहो कि उसको पकड़े।

शिष्य—(बाहर जाकर आता है) (विषाद से) गुरुजी! भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है।

चाणक्य—(आप ही आप) निज काज साधने के लिये जाय (क्रोध से प्रकाश) भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त,

राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा से कहो कि दुष्ट भागुरायण को पकड़ें।

शिष्य— जो आज्ञा ( बाहर जाकर फिर आकर विषाद से ) महाराज! बड़े दुःख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा हलचल हो रहा है। भद्रभट इत्यादि तो सब पिछली ही रात भाग गये।

चाणक्य—( आप ही आप ) सब काम सिद्ध करें ( प्रकाश ) बेटा, सोच मत करो।

जे बात कछु जिय धारि भागें भले सुख सों भागही।
जे रहे तेहू जाहि तिन को, सोच मोहि जिय कछु नही॥
सत सैन हूं सो अधिक साधिनि काज की जेहि जग कहे।
सो नन्दकुल की खननहारी बुद्धि नित मो मैं रहै॥

( उठकर और आकाश की ओर देख कर ) अभी भद्रभटादिकों को पकड़ता हूँ ( आप ही आप ) राक्षस! अब मुझसे भाग के कहाँ जायगा, देख—

एकाकी मद गलित गज, जिमि नर लावहिं बांधि।
चन्द्रगुप्त के काज मै, तिमि तोहि धरि है साधि॥

( सब जाते हैं )

( जवनिका गिरती है )

इति प्रथमाङ्क।

# द्वितीय अंक

स्थान—राजपथ

( मदारी आता है )

मदारी—अललललललल, नाग लाये साँप लाये !

तन्त्र युक्ति सब जानहीं, मण्डल रचहि विचार ।
मन्त्र रच्छही ते करहि, अहि नृप को उपचार ॥

( * आकाश में देख कर ) महाराज ! क्या कहा ? तू कौन है ? महाराज ! मै जीर्णविष नाम सँपेरा हूँ ( फिर आकाश की ओर देख-कर ) क्या कहा कि मैं भी साँप का मन्त्र जानता हूँ खेलूँगा ? तो आप काम क्या करते हैं, यह तो कहिये ? ( फिर आकाश की ओर देखकर ) क्या कहा—मै राज सेवक हूं ? तो आप तो साँप के साथ खेलते ही हैं । ( फिर ऊपर देख कर ) क्या कहा, कैसे ? मन्त्र और जड़ी बिन मदारी और आँकुस बिन मतवाले हाथी का हाथीवान, वैसे ही नये अधिकार के संग्राम विजयी राजा के सेवक ये तीनों अवश्य नष्ट होते हैं ( ऊपर देख कर ) यह देखते २ कहाँ चला गया ? ( फिर ऊपर देख कर ) क्या महाराज ! पूछते हो कि इन पिटारियों में क्या है ? इन पिटारियों में मेरी जीविका के सर्प हैं । ( फिर ऊपर देख कर ) क्या कहा कि मै देखूंगा ? वाह वाह महा-राज ! देखिये देखिये, मेरी बोहनी हुई, कहिये इसी स्थान पर खोलूँ ? परन्तु यह स्थान अच्छा नहीं है; यदि आपको देखने की इच्छा हो तो आप इस स्थान मे आइये में दिखाऊँ; ( फिर आकाश

---

* 'आकाश में देखकर' या 'ऊपर देख कर' का आशय यह है मानो दूसरे से बात करता है ।

की ओर देखकर) क्या कहा कि यह स्वामी राक्षस मन्त्री का घर है, इसमें मैं घुसने न पाऊँगा, तो आप जायँ, महाराज! मै तो अपनी जीविका के प्रभाव से सभी के घर जाता-आता हूँ। अरे क्या वह गया? (चारों ओर देखकर) अहा! बड़े आश्चर्य की बात है, जब मैं चाणक्य की रक्षा में चन्द्रगुप्त को देखता हूँ तब समझता हूँ कि चन्द्रगुप्त ही राज्य करेगा, पर जब राक्षस की रक्षा मे मलयकेतु को देखता हूँ तब चन्द्रगुप्त का राज्य गया सा दिखाई देता है। क्योंकि—

चाणक्य ने लै जदपि बाँधी बुद्धिरूपी डोर सों।
करि अचल लक्ष्मी मौर्य्यकुल मे नीति के निज जोर सों॥
पै तदपि राक्षस चातुरी करि हाथ मे ताकौ करै।
गहि ताहि खींचत आपुनी दिस मोहि यह जानी परै॥

सो इन दोनो परम नीति चतुर मन्त्रियों के विरोध मे नन्दकुल की लक्ष्मी संशय मे पड़ी है।

दोऊ सचिव विरोध सो, जिमि बन जुग गजराय।
हथिनी सो लक्ष्मी विचल, इत उत झोका खाय॥

तो चलूं अब मन्त्री राक्षस से मिलूं।

(जवनिका उठती है और आसन पर बैठा राक्षस और पास प्रियम्वदक नामक सेवक दिखाई देते है)

राक्षस—(ऊपर देखकर आँखों में आँसू भर कर) हा! बड़े कष्ट की बात है—

गुन-नीति-बल सो जीति अरि जिमि, आप जादवगन हयो।
तिमि नन्दको यह बिपुल कुल, विधि बामसों सब नसि गयो॥
एहि सोच में मोहि दिवस अरु निसि, नित्य जागत बीत हीं।
यह लखौ चित्र विचित्र मेरे भाग के बिनु भीत हीं॥

अथवा

बिनु भक्ति भूले, बिनहिं स्वारथ हेतु, हम यह पन लियो।
बिनु प्राण के भय, बिनु प्रतिष्ठा लाभ, सब अबलों कियो॥
सब छोड़ि के परदासता एहि हेत, नित प्रति हम करें।
जो स्वर्ग में हूँ स्वामि मम निज शत्रु हत लखि सुख भरें॥

(आकाश की ओर देख कर दुःख से) हा! भगवती लक्ष्मी! तू बड़ी अगुणज्ञा है। क्योंकि—

निज तुच्छ सुख के हेतु तजि, गुनरासि नन्द नृपाल कों।
अब शूद्र मे अनुरक्त ह्वै लपटी सुधा मनु व्याल कों॥
ज्यों मत्त गज के मरत मद की धार ता साथहि नसै।
त्यों नन्द के साथहि नसी किन निलज अजहूं जग बसै॥

अरे पापिन!

का जग में कुलवन्त नृप, जीवत रह्यो न कोय?।
जो तू लपटो शूद्र सो नीच गामिनी होय॥

अथवा

बारबधू जन को अहै, सहजहि चपल सुभाव।
तजि कुलीन गुनियन करहि, ओछे जन सो चाव॥

तो हम भी अब तेरा आधार ही नाश किये देते है (कुछ सोच कर) हम मित्रवर चन्दनदास के घर अपना कुटुम्ब छोड़ कर बाहर चले आये सो अच्छा ही किया। एक तो अभी कुसुमपुर को चाणक्य घेरा नही चाहता, दूसरे यहां के निवासी महाराज मे अनुरक्त हैं, इससे हमारे सब उद्योगो में सहायक होते हैं। वहाँ भी विषादिक से चन्द्रगुप्त के नाश करने को और सब प्रकार से शत्रु का दाँव घात व्यर्थ करने को बहुतसा धन देकर शकटदास को छोड़ ही दिया है। प्रतिक्षण शत्रुओ का भेद लेने और उनका उद्योग नाश करने को भी जीवसिद्धि इत्यादि सुहृद नियुक्त ही हैं। सो अबतो—

विषवृक्ष अहिसुत, सिंहपोत समान जा दुखरास कों।
नृपनन्द निजसुत जानि पाल्यौ, सकुल निज असु नाश कों॥
ता चन्द्रगुप्तहि बुद्धि सर मम तुरत मारि गिराइ है।
जो दुष्ट दैव न कवच बनि के असह आड़े आइ है॥

( कञ्चुकी आता है )

कंचुकी—( आप ही आप )

नृपनन्द काम समान चानक-नीति-जर जरजर भयो।
पुनि धर्म्म सम पुर देह सों नृप चन्द्र क्रम सो बढ़ि लयो॥
अवकास लहि तेहि लोभ राक्षस जदपि जीतन जाइ है।
पै सिथिल बल भै नाहिं कोउ विधि चन्द्र पै जय पाइ है॥

( देख कर ) यह मन्त्री राक्षस है ( आगे बढ़ कर ) मन्त्री! आपका कल्याण हो।

राक्षस—जाजलक! प्रणाम करता हूँ। अरे प्रियम्वदक! आसन ला।

प्रियम्वदक—( आसन लाकर ) यह आसन है, आप बैठें।

कंचुकी—( बैठ कर ) मन्त्री। कुमार मलयकेतु ने आप को यह कहा है कि "आप ने बहुत दिनों से अपने शरीर का सब शृङ्गार छोड़ दिया है इससे मुझे बड़ा दुःख होता है। यद्यपि आपको अपने स्वामी के गुण नहीं भूलते और उनके वियोग के दुःख मे यह सब कुछ नहीं अच्छा लगता तथापि मेरे कहने से आप इनको पहिरें।" ( आभरण दिखाता है ) मन्त्री! ये आभरण कुमार ने अपने अङ्ग से उतार कर भेजे है आप इन्हें धारण करें।

राक्षस—जाजलक ! कुमार से कहदो कि तुम्हारे गुणों के आगे मैं स्वामी के गुण भूल गया। पर—

इन दुष्ट बैरिन सो दुखी निज अंग, नाहि सँवारिहौ।
भूषन बसन सिंगार तब लौं हौं, न तन कछु धारिहौं॥
जब लो न सब रिपु नासि, पाटलिपुत्र फेर बसाइहौ।
हे कुँवर ! तुम को राज दै, सिर अचल छत्र फिराइहौ॥

कंचुकी—अमात्य ! आप जो न करो सो थोड़ा है, यह बात कौन कठिन है ? पर कुमार की यह पहिली विनती तो मानने ही के योग्य है।

राक्षस—मुझे तो जैसी कुमार की आज्ञा माननीय है वैसी ही तुम्हारी भी, इससे मुझे कुमार की आज्ञा मानने में कोई विचार नहीं है।

कंचुकी—( आभूषण पहिराता है ) कल्याण हो महाराज! मेरा काम पूरा हुआ।

राक्षस—मैं प्रणाम करता हूं।

कंचुकी—मुझ को जो आज्ञा हुई थी सो मैंने पूरी की ( जाता है )

राक्षस—प्रियम्बदक ! देख तो मेरे मिलने को द्वार पर कौन खड़ा है।

प्रियम्बदक—जो आज्ञा ( आगे बढ़कर सपेरे के पास आकर ) आप कौन हैं ?

सँपेरा—मैं जीर्णविष नामक सँपेरा हूं और राक्षस मन्त्री के साम्हने मैं साँप खिलाना चाहता हूँ। मेरी यह जीविका है।

प्रियम्बदक—तो ठहरो हम अमात्य से निवेदन करलें ( राक्षस के पास जाकर ) महाराज ! एक सँपेरा है, वह आपको अपना करतब दिखलाया चाहता है ।

राक्षस—( बाँई आँख का फड़कना देख कर आप ही आप ) हैं आज पहिले ही साँप दिखाई पड़े ( प्रकाश ) प्रियम्बदक ! मेरा साँप देखने को जी नहीं चाहता सो इसे कुछ देकर बिदा कर ।

प्रियम्दबक—जो आज्ञा ( सँपेरे के पास जाकर ) लो, मन्त्री तुम्हारा कौतुक विना देखे ही तुम्हे यह देते हैं, जाओ ।

सँपेरा—मेरी ओर से यह बिनती करो कि मैं केवल सँपेरा ही नहीं हूँ किन्तु भाषा का कवि भी हूँ इससे जो मन्त्री जी मेरी कविता मेरे मुख से न सुना चाहें तो यह पत्र ही दे दो पढ़लें ( एक पत्र देता है ) ।

प्रियम्बदक—( पत्र लेकर राक्षस के पास आकर ) महाराज ! वह सँपेरा कहता है कि मैं केवल सँपेरा ही नही हूँ, भाषा का कवि भी हूँ । इस से जो मन्त्री जी मेरी कविता मेरे मुख से सुनना न चाहे तो यह पत्र ही दे दो पढ़लें ( पत्र देता है ) ।

राक्षस—( पत्र पढता है )

सकल कुसुम रस पान करि, मधुप रसिक सिरताज ।
जो मधु त्यागत ताहि लै, होत सबै जगकाज ॥

( आप ही आप ) अरे ! ।—"मैं कुसुमपुर का वृत्तान्त जानने वाला आप का दूत हूं" इस दोहे से यह ध्वनि निकलती है । अह ! मै तो कामों से ऐसा घबड़ा रहा हूँ कि अपने भेजे भेदिया लोगों को भी भूल गया ।

अब स्मरण आया, यह तो सँपेरा बना हुआ विराध-गुप्त कुसुमपुर से आया है (प्रकाश) प्रियम्वदक! इस को बुलाओ, यह सुकवि है, मैं भी इस की कविता सुना चाहता हूँ।

प्रियम्वदक—जो आज्ञा (सँपेरे के पास जाकर) चलिए, मन्त्री जो आप को बुलाते हैं।

सँपेरा—(मन्त्री के साम्हने जाकर और देखकर आप ही आप) अरे यही मन्त्री राक्षस है? अहा!—

लै वाम बाहु-लताहि राखत कण्ठ सौं खसि खसि परै।
तिमि धरे दच्छिन बाहु कोहू गोद में बिचलै गिरै॥
जा बुद्धि के डर होइ संकित नृप हृदय कुच नहि धरै।
अजहूँ न लक्ष्मी चन्द्रगुप्तहि गाढ़ आलिंगन करै॥

(प्रकाश) मन्त्री की जय हो।

राक्षस—(देख कर) अरे विराध—(सकोच से बात उड़ाकर) प्रियम्वदक! मैं जब तक सर्पों से अपना जो बहलाता हूं तब तक सब को लेकर तू बाहर ठहर।

प्रियम्वदक— जो आज्ञा।

(बाहर जाता है)

राक्षस—मित्र बिराधगुप्त! इस आसन पर बैठो।

विराधगुप्त—जो आज्ञा (बैठता है)।

राक्षस—(खेद के सहित निहार कर) हा! महाराज नन्द के आश्रित लोगों की यह अवस्था! (रोता है)।

विराधगुप्त—आप कुछ शोच न करें, भगवान् की कृपा से शीघ्र ही वही अवस्था होगी।

राक्षस—मित्र विराधगुप्त ! कहो, कुसुमपुर का वृत्तान्त कहो।

विराधगुप्त—महाराज ! कुसुमपुर का वृत्तान्त बहुत लम्बा चौड़ा है, इस से जहाँ से आज्ञा हो वहाँ से कहूँ।

राक्षस—मित्र ! चन्द्रगुप्त के नगर प्रवेश के पीछे मेरे भेजे हुए विष देने वाले लोगो ने क्या क्या किया यह सुना चाहता हूँ।

विराधगुप्त—सुनिये—शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारस, वाह्लीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजाओं की सहायता से, चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर के बलरूपी समुद्र से कुसुमपुर चारो ओर से घिरा हुआ है।

राक्षस—( कृपाण-खींच कर क्रोध से ) हैं ! मेरे जीते कौन कुसुमपुर घेर सकता है ? प्रवीरक ! प्रवीरक !

चढ़ौ लै सरैं धाइ घेरौ अटा को।
धरौ द्वार पै कुँजरैं ज्यों घटा को॥
कहौ जोधनैं मृत्यु को जीति धावैं।
चलैं सङ्ग भै छांड़ि कै कीर्ति पावैं॥

विराधगुप्त—महाराज ! इतनी शीघ्रता न कीजिये मेरी बात सुन लीजिये।

राक्षस—कौन बात सुनूँ ? अब मैने जान लिया कि इसी का समय आगया है ( शस्त्र छोड़कर आँखों में आँसू भरकर ) हा ! देवनन्द ! राक्षस को तुम्हारो कृपा कैसे भूलैगी ?

हैं जहँ झुंड खड़े गज मेघ के आज्ञा करौ तहाँ राक्षस ! जायकै।
त्यों ये तुरङ्ग अनेकन हैं, तिनहूँ के प्रबन्धहि राखौ बनायकै॥
पैदल ये सब तेरे भरोसे हैं, काज करौ तिन को चित लायकै।
यों कहि एक हमै तुम मानत हे, निज काज हजार बनायकै॥

हाँ फिर ?

विराधगुप्त—तब चारों ओर से कुसुम नगर घेर लिया और नगरवासी विचारे भीतर ही भीतर घिरे २ घबड़ा गये, उनकी उदासी देख कर सुरंग के मार्ग से सर्वार्थसिद्धि तपोवन मे चला गया, और स्वामी के बिरह से आप के सब लोग शिथिल हो गये। तब अपने जय की डौड़ी सब नगर में शत्रु लोगों ने फिरवा दी, और आप के भेजे हुए लोग सुरंग मे इधर उधर छिप गये, और जिस विषकन्या को आपने चन्द्रगुप्त के नाश हेतु भेजा था। उस से तपस्वी पर्व्वतेश्वर मारा गया।

राक्षस—अहा मित्र! देखो, कैसा आश्चर्य्य हुआ—

जो विषमयी नृप चन्द्र बध हित नारि राखी लाइ कै।
तासो हत्यो पर्व्वत उलटि चाणक्य बुद्धि उपाइ कै॥
जिमि करन शक्ति अमोघ अरजुन हेतु धरी छिपाइ कै।
पै कृष्ण के मत सो घटोत्कच पै परी घहराइ कै।

विराधगुप्त—महाराज! समय की सब उलटी गति है।—क्या कीजिएगा ?

राक्षस—हाँ! तब क्या हुआ ?

विराधगुप्त—तब पिता का बध सुनकर कुमार मलयकेतु नगर से निकल कर चले गए, और पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक पर उन लोगो ने अपना विश्वास जमा लिया तब उस दुष्ट चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का प्रवेशमुहूर्त्त प्रसिद्ध करके नगर के सब बढ़ई और लोहारों को बुलाकर एकत्र किया और उन से कहा कि महाराज के नन्दभवन में गृह प्रवेश का मुहूर्त्त ज्योतिषियों ने आज ही आधी

रात का दिया है, इस से बाहर से भीतर तक सब द्वारों को जाँच लो; तब उस से बढ़ई लोहारो ने कहा कि "महाराज ! चन्द्रगुप्त का गृहप्रवेश जानकर दारुवर्म्म ने प्रथम द्वार तो पहिले ही सोने की तोरनों से शोभित कर रक्खा है, भीतर के द्वारों को हम लोग ठीक करते हैं।" यह सुन कर चाणक्य ने कहा कि बिना कहे ही दारुवर्म्म ने बड़ा काम किया इस से उसको चतुराई का पारितोषिक शीघ्र ही मिलेगा।

राक्षस—( आश्चर्य से ) चाणक्य प्रसन्न हो यह कैसी बात है ? इस से दारुवर्म्म का यत्न या तो उलटा हो या निष्फल होगा, क्योंकि इस ने बुद्धिमोह से या राजभक्ति से बिना समय ही चाणक्य के जी में अनेक सन्देह और विकल्प उत्पन्न कराया। हाँ फिर ?

विराधगुप्त—फिर उस दुष्ट चाणक्य ने बुला कर सब को सहेज दिया कि आज आधी रात को प्रवेश होगा, और उसी समय पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक और चंद्रगुप्त को एक आसन पर बिठा कर पृथ्वी का आधा २ भाग कर दिया।

राक्षस—क्यों पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक को आधा राज मिला, यह पहिले ही उसने सुना दिया ?

विराधगुप्त—हाँ, तो इस से क्या हुआ ?

राक्षस—( आप ही आप ) निश्चय यह ब्राह्मण बड़ा धूर्त है, कि इस ने उस सीधे तपस्वी से इधर उधर की चार बातें बनाकर पर्व्वतेश्वर के मारने के अपयश निवारण के हेतु यह उपाय सोचा। ( प्रकाश ) अच्छा कहो—तब ?

विराधगुप्त—तब यह तो उसने पहिले ही प्रकाशित कर दिया था कि आज रात को गृहप्रवेश होगा, फिर उसने वैरोधक को अभिषेक कराया और बड़े बड़े बहुमूल्य स्वच्छ मोतियों का उसको कवच पहिराया और अनेक रत्नो से जड़ा सुन्दर मुकुट उसके सिर पर रक्खा और गले में अनेक सुगन्ध के फूलो की माला पहिराई, जिससे वह एक ऐसे बड़े राजा की भाँति हो गया कि जिन लोगों ने उसे सर्वदा देखा है वे भी न पहिचान सकें। फिर उस दुष्ट चाणक्य की आज्ञा से लोगों ने चन्द्रगुप्त की चन्द्रलेखा नाम की हथिनी पर बिठा कर बहुत से मनुष्य साथ कर के बड़ी शीघ्रता से नन्द मन्दिर मे उसका प्रवेश कराया। जब वैरोधक मन्दिर में घुसने लगा तब आप का भेजा दारुवर्म्म बढ़ई उस को चन्द्रगुप्त समझ कर उसके ऊपर गिराने को अपनी कल की बनी तोरन लेकर सावधान हो बैठा। इसके पीछे चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजा सब बाहर खड़े रह गए और जिस बर्बर को आपने चन्द्रगुप्त के मारने के हेतु भेजा था वह भी अपनो सोने की छड़ो की गुप्ती जिस में एक छोटी कृपाण थी लेकर वहाँ खड़ा हो गया।

राक्षस—दोनों ने बे ठिकाने काम किया, हाँ फिर?

विराधगुप्त—तब उस हथिनी को मार कर बढ़ाया और उसके दौड़ चलने से कल की तोरण का लक्ष, जो चन्द्रगुप्त

के धोखे वैरोधक पर किया गया था, चूक गया और वहाँ बर्बर जो चन्द्रगुप्त का आसरा देखता था, वह विचारा उसी कल की तोरन से मारा गया। जब दारुवर्म्म ने देखा कि लक्ष को चूक गए, अब मारे जायहींगे तो उसने उस कल के लोहे की कील से उस ऊंचे तोरन के स्थान ही पर से चन्द्रगुप्त के धोखे तपस्वी वैरोधक को हथिनी ही पर मार डाला।

राक्षस—हाय! दोनो बात कैसे दुःख की हुईं चन्द्रगुप्त तो काल से बच गया और दोनो बिचारे बर्बर और वैरोधक मारे गए; ( आप ही आप ) दैव ने इन दोनो को नहीं मारा हम लोगो को मारा !! ( प्रकाश ) और वह दारु-वर्म्म बढ़ई क्या हुआ ?

विराधगुप्त—उस को वैरोधक के साथ के मनुष्यों ने मार डाला।

राक्षस—हाय! बड़ा दुःख हुआ! हाय प्यारे दारुवर्म्म का हम लोगों से वियोग हो गया। अच्छा! उस वैद्य अभय-दत्त ने क्या किया ?

विराधगुप्त—महाराज! सब कुछ किया।

राक्षस—( हर्ष से ) क्या चन्द्रगुप्त मारा गया ?

विराधगुप्त—दैव ने न मरने दिया।

राक्षस—( शोक से ) तो क्या फूल कर कहते हो कि सब कुछ किया ?

विराधगुप्त—उसने औषधि में विष मिला कर चन्द्रगुप्त को दिया, पर चाणक्य ने उसको देख लिया और सोने के बरतन में रखकर उसका रङ्ग पलटा जान कर चन्द्रगुप्त से कह दिया कि इस औषधि मे विष मिला है, इसको न पीना।

राक्षस—अरे वह ब्राह्मण बड़ा ही दुष्ट है। हाँ, तो वह वैद्य क्या हुआ?

विराधगुप्त—उस वैद्य को वही औषधि पिला कर मार डाला।

राक्षस—( शोक से ) हाय हाय! बड़ा गुणी मारा गया! भला शयनघर के प्रबन्ध करनेवाले प्रमोदक ने क्या किया?

विराधगुप्त—उसने सब चौका लगाया।

राक्षस—( घबड़ा कर ) क्यों?

विराधगुप्त—उस मूर्ख को जो आपके यहाँ से व्यय को धन मिला सो उसने अपना बड़ा ठाट बाट फैलाया, यह देखते ही चाणक्य चौकन्ना हो गया और उससे अनेक प्रश्न किए, जब उसने उन प्रश्नो के उत्तर अण्डबण्ड दिये तो उस पर पूरा सन्देह करके दुष्ट चाणक्य ने उसको बुरी चाल से मार डाला।

राक्षस—हाँ! क्या दैव ने यहाँ भी उलटा हमी लोगों को मारा! भला वह चन्द्रगुप्त को सोते समय मारने के हेतु जो राजभवन में वीभत्सकादिक वीर सुरङ्ग मे छिपा रक्खे थे उनका क्या हुआ?

विराधगुप्त—महाराज! कुछ न पूछिये।

राक्षस—( घबड़ा कर ) क्यों क्यों! क्या चाणक्य ने जान लिया?

विराधगुप्त—नहीं तो क्या?

राक्षस—कैसे?

विराधगुप्त—महाराज! चन्द्रगुप्त के सोने जाने के पहिले ही वह दुष्ट चाणक्य उस घर में गया और उसको चारों ओर से देखा तो भीतकी एक दरार से चिउँटियाँ चावल के कने लाती हैं यह देख कर उस दुष्ट ने निश्चय कर लिया

कि इस घर के भीतर मनुष्य छिपे हैं; बस यह निश्चय कर उसने उस घर में आग लगवा दी और धूआँ से घबड़ा कर निकल तो सके ही नहीं, इससे वे बीभत्सकादिक वहीं भीतर ही जल कर राख हो गये।

राक्षस—( सोच से ) मित्र ! देख चन्द्रगुप्त का भाग्य कि सब के सब मर गये ! ( चिन्ता सहित ) अहा ! सखा ! देख इस दुष्ट चन्द्रगुप्त का भाग्य !!!

कन्या जो विष की गई, ताहि हतन के काज।
तासों माखौ पर्व्वतक, जाको आधो राज॥
सबै नसे कलबल सहित, जे पठये बध हेत।
उलटी मेरी नीति सब, मौर्य्यहि को फल देत॥

विराधगुप्त—महाराज ! तब भी उद्योग नहीं छोड़ना चाहिये—

प्रारम्भ ही नहि विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजैं।
पुनि करहि तौ काऊ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं॥
धरि लात बिघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम ते टरैं।
जे पुरुष उत्तम अन्त में ते सिद्ध सब कारज करैं॥

और भी—

का सेसहि नहिं भार पै, धरती देत न डारि।
कहा दिवसमनि नहि थकत पै नहि रुकत बिचारि॥
सज्जन ताको हित करत, जेहि किय अंगीकार।
यहै नेम सुकृतीन को, निज जिय करहु बिचार॥

राक्षस—मित्र ! यह क्या तू नहीं जानता कि मै प्रारब्ध के भरोसे नहीं हूँ ? हाँ, फिर।

विराधगुप्त—तब से दुष्ट चाणक्य चन्द्रगुप्त की रक्षा में चौकन्ना रहता है और इधर उधर के अनेक उपाय सोचा

करता है और पहिचान २ के नन्द के मित्रों को पकड़ता है।

राक्षस—( घवड़ा कर ) हां! कहो तो, मित्र उसने किसे किसे पकड़ा है ?

विराधगुप्त—सब के पहिले तो जीवसिद्धि क्षपणक को निरादर कर के नगर से निकाल दिया।

राक्षस—( आप ही आप ) भला इतने तक तो कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि वह जोगी है उसका घर विना जी न घबड़ायगा। ( प्रकाश ) मित्र! उस पर अपराध क्या ठहराया ?

विराधगुप्त—कि इसी दुष्ट ने राक्षस की भेजी विषकन्या से पर्व्व-तेश्वर को मार डाला।

राक्षस—( आप ही आप ) वाहरे कौटिल्य वाह! क्यों न हो!

निज कलंक हम पै धर्‌यौ, हत्यौ अर्द्ध बटवार।
नीति बीज तुव एक ही, फल उपजवत हजार॥

( प्रकाश ) हाँ, फिर ?

विराधगुप्त—फिर चन्द्रगुप्त के नाश को इस ने दारुवर्म्मादिक नियत किये थे यह दोष लगा कर शकटदास को सूली दे दी।

राक्षस—( दुःख से ) हा मित्र! शकटदास! तुम्हारी बड़ी अयोग्य मृत्यु हुई। अथवा स्वामी के हेतु तुम्हारे प्राण गए। इस से कुछ शोच नहीं है, शोच हमी लोगो का है कि स्वामी के मरने पर भी जीना चाहते हैं।

विराधगुप्त—मन्त्री! ऐसा न सोचिये, आप स्वामी का काम कीजिये।

राक्षस—मित्र!

केवल है यह सोक, जीव लोभ अब लौ बचे।
स्वामि गयो परलोक, पै कृतघ्न इत ही रहे॥

विराधगुप्त—महाराज! ऐसा नहीं (केवल यह ऊपर का छन्द फिर से पढ़ता है)*।

राक्षस—मित्र! कहो, और भी सैकड़ों मित्रों का नाश सुनने को ये पापी कान उपस्थित हैं।

विराधगुप्त—यह सब सुन कर चन्दनदास ने बड़े कष्ट से आपके कुटुम्ब को छिपाया।

राक्षस—मित्र! उस दुष्ट चाणक्य के तो चन्दनदास ने विरुद्ध ही किया।

विराधगुप्त—तो मित्र का बिगाड़ करना तो अनुचित ही था।

राक्षस—हाँ, फिर क्या हुआ?

विराधगुप्त—तब चाणक्य ने आपके कुटुम्ब को चन्दनदास से बहुत माँगा पर उसने नहीं दिया, इस पर उस दुष्ट ब्राह्मण ने—

राक्षस—(घबड़ा कर) क्या चन्दनदास को मार डाला?

विराधगुप्त—नहीं, मारा तो नहीं, पर स्त्री पुत्र धन समेत बाँध कर बन्दी घर में भेज दिया।

राक्षस—तो क्या ऐसा सुखी होकर कहते हो कि बन्धन में भेज दिया? अरे! यह कहो कि मन्त्री राक्षस को कुटुम्ब सहित बाँध रक्खा है।

---

* अर्थात जो लोग जीव लोभ से बचे हैं वे कृतघ्न हैं, आप तो स्वामी के कार्यसाधन को जीते हैं।

( प्रियम्वदक आता है । )

प्रियम्बदक—जय जय महाराज ! बाहर शकटदास खड़े हैं ।

राक्षस—( आश्चर्य से ) सच ही !

प्रियम्बदक—महाराज—आपके सेवक कभी मिथ्या बोलते हैं ?

राक्षस—मित्र विराधगुप्त ! यह क्या ?

विराधगुप्त—महाराज ! होनहार जो बचाया चाहे तो कौन मार सकता है ?

राक्षस—प्रियम्बदक ! अरे जो सच ही कहता है तो उन को झटपट लाता क्यो नहीं ?

प्रियम्बदक—जो आज्ञा ( जाता है । )

( सिद्धार्थक के सग शकटदास आता है । )

शकटदास—देख कर ( आप ही आप )

वह सूली गड़ी जो बड़ी दृढ़ के,
सोई चन्द्र को राज थिरयो प्रन तें ।
लपटी वह फाँस की डोर सोई,
मनु श्री लपटी वृषलै मन ते ॥
बजो डौंड़ी निरादर की नृप नन्द के,
सोऊ लख्यो इन आँखन तें ।
नहि जान परै इतनोहूँ भए,
केहि हेत न प्रान कढ़े तन तें ॥

( राक्षस को देख कर ) यह मन्त्री राक्षस बैठे है । अहा !

नन्द गए हू नहि तजत, प्रभु सेवा को स्वाद ।
भूमि बैठि प्रगटत मनहुँ, स्वामिभक्त मरजाद ॥

( पास जाकर ) मन्त्री की जय हो ।

राक्षस—( देख कर आनन्द से ) मित्र शकटदास ! आओ मुझ से मिल लो, क्योंकि तुम दुष्ट चाणक्य के हाथ से बच के आए हो।

शकटदास—( मिलता है )।

राक्षस—( मिल कर ) यहाँ बैठो।

शकटदास—जो आज्ञा ( बैठता है )।

राक्षस—मित्र शकटदास ! कहो तो यह आनन्द की बात कैसे हुई ?

शकटदास—( सिद्धार्थक को दिखा कर ) इस प्यारे सिद्धार्थक ने सूली देने वाले लोगों को हटा कर मुझ को बचाया।

राक्षस—( आनन्द से ) वाह सिद्धार्थक ! तुमने काम तो अमूल्य किया है, पर भला ! तब भी यह जो कुछ है सो लो ( अपने अंग से आभरण उतार कर देता है। )

सिद्धार्थक—( लेकर आप ही आप ) चाणक्य के कहने से मैं सब करूँगा ( पैर पर गिर के प्रकाश ) महाराज ! यहाँ मैं पहिले पहल आया हूँ इससे मुझे यहाँ कोई नहीं जानता कि मैं उसके पास इन भूषणों को छोड़ जाऊँ, इससे आप इसी अँगूठी से इस पर मोहर करके इसको अपने ही पास रक्खें, मुझे जब काम होगा ले जाऊँगा।

राक्षस—क्या हुआ। अच्छा शकटदास ! जो यह कहता है वह करो।

शकटदास—जो आज्ञा ( मोहर पर राक्षस का नाम देख कर धीरे से ) मित्र ! यह तो तुम्हारे नाम की मोहर है।

राक्षस—( देख कर बड़े शोच से आप ही आप ) हाय २ इसको तो

जब मै नगर से निकला था तो ब्राह्मणी ने मेरे स्मरणार्थ ले लिया था, वह इसके हाथ कैसे लगी ? ( प्रकाश ) सिद्धार्थक ! तुम ने यह कैसे पाई ?

सिद्धार्थक—महाराज ! कुसुमपुर मे जो चन्दनदास जौहरी हैं उनके द्वार पर पड़ी पाई।

राक्षस—तो ठीक है।

सिद्धार्थक—महाराज ! ठीक क्या है ?

राक्षस—यही कि ऐसे धनिकों के घर बिना यह वस्तु और कहाँ मिले ?

शकटदास—मित्र ! यह मन्त्री जी के नाम की मोहर है इससे तुम इसको मन्त्री को दे दो, तो इसके बदले तुम्हे बहुत पुरस्कार मिलेगा।

सिद्धार्थक—महाराज ! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि आप इसे लें।

( मोहर देता है )

राक्षस—मित्र शकटदास ! इसी मुद्रा से सब काम किया करो।

शकटदास—जो आज्ञा।

सिद्धार्थक—महाराज ! मैं कुछ बिनती करूँ ?

राक्षस—हाँ हाँ ! अवश्य करो।

सिद्धार्थक—यह तो आप जानते ही है कि उस दुष्ट चाणक्य को बुराई करके फिर मैं पटने मैं घुस नही सकता इससे कुछ दिन आप ही के चरणों की सेवा किया चाहता हूँ।

राक्षस—बहुत अच्छी बात है, हम लोग तो ऐसा चाहते ही थे, अच्छा है, यही रहो।

सिद्धार्थक—( हाथ जोड़ कर ) बड़ी कृपा हुई।

राक्षस—मित्र शकटदास! ले जाओ, इसको उतारो और सब भोजनादिक का ठीक करो!

शकटदास—जो आज्ञा।

( सिद्धार्थक को लेकर जाता है )

राक्षस—मित्र विराधगुप्त! अब तुम कुसुमपुर का वृत्तान्त जो छूट गया था सो कहो! वहाँ के निवासियों को मेरी बातें अच्छी लगती हैं कि नहीं?

विराधगुप्त—बहुत अच्छी लगती हैं, वरन् वे सब तो आप ही के अनुयायी हैं।

राक्षस—ऐसा क्यों?

विराधगुप्त—इसका कारण यह है कि मलयकेतु के निकलने के पीछे चाणक्य को चन्द्रगुप्त ने कुछ चिढ़ा दिया और चाणक्य ने भी उसकी बात न सह कर चन्द्रगुप्त की आज्ञा भंग करके उसको दुःखी कर रक्खा है, यह मैं भली भाँति जानता हूँ।

राक्षस—(हर्ष से) मित्र विराधगुप्त! तो तुम इसी सँपेरे के भेस से फिर कुसुमपुर जाओ और वहाँ मेरा मित्र स्तनकलस नामक कवि है उससे कह दो कि चाणक्य के आज्ञा भँगादिकों के कवित्त बना बनाकर चन्द्रगुप्त को बढ़ावा देता रहे और जो कुछ काम हो जाय वह करभक से कहला भेजे।

विराधगुप्त—जो आज्ञा ( जाता है )

( प्रियम्वदक आता है )

प्रियम्वदक—जय हो महाराज! शकटदास कहते हैं कि यह तीन आभरण बिकते हैं इन्हें आप देखें।

राक्षस—( देख कर ) अहा यह तो बड़े मूल्य के गहने हैं, अच्छा शकटदास से कह दो कि दाम चुका कर ले लें।

प्रियम्वदक—जो आज्ञा ( जाता है )।

राक्षस—तो अब हम भी चल कर करभक को कुसुमपुर भेजें ( उठता है )। अहा! क्या उस मृतक चाणक्य से चन्द्रगुप्त से बिगाड़ हो जायगा, क्यों नहीं? क्योंकि सब कामों को सिद्ध ही देखता हूँ।

चन्द्रगुप्त निज तेज बल, करत सबन को राज।
तेहि समझत चाणक्य यह, मेरो दियो समाज॥
अपनो २ करि चुके, काज रह्यो कछु जौन।
अब जौ आपुस मे लड़ें, तौ बड़ अचरज कौन॥

( जाता है )

——:※:——

# तृतीय अंक

( स्थान—राजभवन की अटारी )

कंचुकी आता है।

कंचुकी—जे रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सो।
सो मिटे इन्द्रीगन सहित ह्वै सिथिल अतिही छोभ सो॥
मानत कह्यौ कोउ नाहि सब अँग अँग ढीले ह्वै गए।
तौहू न तृस्ने! क्यों तजत तू मोहि बूढ़ोहू भए॥

( आकाश की ओर देख कर ) अरे! अरे! सुगांगप्रासाद के लोगो! सुनो। महाराज चन्द्रगुप्त ने तुम लोगो को यह आज्ञा दी है कि कौमुदी-महोत्सव के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूँ, इससे उस अटारी को बिछौने इत्यादि से सजा रक्खो देर क्यो करते हो? ( आकाश की ओर देख कर ) क्या कहा? कि क्या महाराज चन्द्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी महोत्सव अब की न होगा? दुर दइमारो! क्या मरने को लगे हो? शीघ्रता करो।

सवैया।

बहु फूल की माल लपेट के खंभन धूप सुगंध सो ताहि धुपाइये।
तापै चहूँ दिस चंद छपा से सुसोभित चौर घने लटकाइये॥
भार सो चारु सिहासन के मुरछा मे धरा परी धेनु सी पाइये।
छींटिं के तापै गुलाब मिल्यौ जल चन्दन ता कहँ जाइ जगाइये॥

( आकाश की ओर देख कर ) क्या कहते हो—कि हम लोग अपने काम में लग रहे हैं ? अच्छा २ झटपट सब सिद्ध करो, देखो ! वह महाराज चन्द्रगुप्त आ पहुँचे ।

बहु दिन श्रम करि नन्द नृप, बह्यो राज धुर जौन ।
बालापन ही में लियौ, चन्द सीस निज तौन ॥
डिगत न नेकहु बिषम पथ, दृढ़ प्रतिज्ञ दृढ़ गात ।
गिरन चहत सँभरत बहुरि, नेकु न जिय घबरात ॥

( नेपथ्य में ) इधर महाराज इधर ।

( राजा और प्रतिहारी आते हैं )

राजा—( आप ही आप ) राज उसी का नाम है जिस में अपनी आज्ञा चले दूसरे के भरोसे राज करना भी एक बोझा ढोना है । क्योंकि—

जो दूजे को हित करे, तौ खोवै निज काज ।
जौ खोयो निज काज तौ, कौन बात को राज ॥
दूजे ही को हित करै, तौ वह परबस मूढ़ ।
कठपुतरी सो स्वाद कछु, पावै कबहुँ न कूढ़ ॥

और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सम्हालना बहुत कठिन है । क्योंकि—

क्रूर सदा भाखत पियहि, चञ्चल सहज सुभाव ।
नर गुन-औगुन नहिं लखति, सज्जन खल सम भाव ॥
डरत सूर सों, भीरु कहँ गिनत न कछु रति* हीन ।
बारनारि अरु लच्छमी, कहौ कौन बस कीन ॥

यद्यपि गुरु ने कहा है कि तू झूठी कलह करके स्वतन्त्र हो कर अपना प्रबन्ध आप कर ले, पर यह तो बड़ा पाप सा है ।

* रति का यहाँ प्रीति अर्थ है ।

अथवा गुरुजी के उपदेश पर चलने से हम लोग तो सदा ही स्वतन्त्र हैं।

जब लौं बिगारै काज नहि तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै!
पै शिष्य जाइ कुराह तो गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै॥
तासौं सदा गुरुवाक्य बस हम नित्य पर आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु से सन्त जन ही जगत मे स्वाधीन हैं॥

(प्रकाश) अजी वैहीनर! "सुगाँगप्रसाद" का मार्ग दिखाओ।

कंचुकी—इधर आइये महाराज इधर!

राजा - (आगे बढता है)

कंचुकी—महाराज! सुगाँगप्रासाद को यही सीढ़ी है।

राजा—(ऊपर चढ़ कर) अहा! शरद ऋतु की शोभा से सब दिशाएँ कैसी सुन्दर हो रही हैं!

सरद विमल ऋतु सोहई, निरमल नील अकाश।
निसानाथ पूरन उदित, सोलह कला प्रकास॥
चारु चमेली बन रही, महमह महँक सुबास।
नदी तीर फूले लखौ, सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमोदिनि सरन मे, फूले सोभा देत।
भौंर वृन्द जापैं लखौ, गूँजि गूँजि रस लेत॥
बसन चाँदनी चन्दमुख, उडुगन मोती माल।
कास फूल मधु हास यह, सरद किधौं नव बाल॥

(चारों ओर देखकर) कंचुकी! यह क्या? नगर में "चन्द्रिकोत्सव" कहीं नहीं मालूम पड़ता; क्या तू ने सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव होय?

कंचुकी—महाराज ! सब से ताकीद कर दी थी ।

राजा—तो फिर क्यो नहीं हुआ ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नही मानी ।

कंचुकी—( कान पर हाथ रख कर ) राम राम ! भला नगर क्या इस पृथ्वी मे ऐसा कौन है जो आप की आज्ञा न माने ?

राजा—तो फिर चन्द्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ ? देख न—

गज रथ बाजि सजे नहीं, बँधी न बन्दनवार ।
तने बितान न कहुँ नगर, रञ्जित कहूँ न द्वार ॥
नर नारी डोलत न कहुँ, फूल माल गल डार ।
नृत्य बाद धुनि गीत नहि, सुनियत स्रवन मँझार ॥

कंचुकी—महाराज ! ठीक है—ऐसा ही है ।

राजा—क्यो ऐसा ही है ?

कंचुकी—महाराज यो ही है ।

राजा—स्पष्ट क्यो नही कहता ?

कंचुकी—महाराज ! चन्द्रिकोत्सव बन्द किया गया है ।

राजा—( क्रोध से ) किसने बन्द किया है ?

कंचुकी—( हाथ जोड़ कर ) महाराज ! यह मै नहीं कह सकता ।

राजा—कहीं आर्य्य चाणक्य ने तो नहीं बन्द किया ?

कंचुकी—महाराज ! और किस को अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी ?

राजा—( अत्यन्त क्रोध से ) अच्छा अब हम बैठेंगे ।

कंचुकी—महाराज ! यह सिंहासन है, विराजिए ।

राजा—( बैठकर क्रोध से ) अच्छा कंचुकी ! आर्य्य चाणक्य से कह कि "महाराज आपको देखा चाहते हैं ।"

कंचुकी—जो आज्ञा ( बाहर जाता है )

( एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखाई पड़ता है )।

चाणक्य—( आप ही आप ) दुष्ट राक्षस हमारी बराबरी करता है, वह जानता है कि—

जिमि हम नृप अपमान सो, महा क्रोध उर धारि।
करी प्रतिज्ञा नन्दनृप, नासन की निरधारि॥
सो नृप नन्दहि पुत्र सह, नासि करी हम पूर्न।
चन्द्रगुप्त राजा कियो, करि राक्षस मद चूर्न॥
तिमि सोऊ मोहि नीति बल, छलन चहत हति चन्द।
पै मो आछत यह जतन, वृथा तासु अति मन्द॥

( ऊपर देख कर क्रोध से ) अरे राक्षस! छोड़ छोड़ यह व्यर्थ का श्रम; देख—

जिमि नृप नन्दहि मारि कै, वृषलहि दीनो राज।
आय नगर चाणक्य किय, दुष्ट सर्प सो काज॥
तिमि सोऊ नृप चन्द को, चाहत करन बिगार।
निज लघु मति लांघ्यौ चहत, मो बल बुद्धि पहार॥

( आकाश की ओर देख कर ) अरे राक्षस! मेरा पीछा छोड़? क्योंकि—

राज काज मन्त्री चतुर, करत बिना अभिमान।
जैसो तुव नृप नन्द हो, चन्द्र न तौन समान॥
तुम कछु नहि चाणक्य जो, साधौ कठिनहु काज।
तासों हम सों बैर करि, नहि सरिहै तुव राज॥

अथवा इस में तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिये। क्योंकि—

मम भागुरायन आदि भृत्यन मलय राख्यौ घेरिकै।
तिमि गए सिद्धारथक ऐहैं तेउ काज निवेरिकै॥
अब लखहु करि छल कलह नृपसो भेद बुद्धि उपाइकै॥
पर्व्वत जनन सों हम बिगारत राक्षसहि उलटाइकै॥

कंचुकी—हा ! सेवा बड़ी कठिन होती है।

नृप सो सचिव सो सब मुसाहेब गनन सो डरते रहौ।
पुनि विटहु जे अति पास के तिनकौ कह्यौ करते रहौ॥
मुख लखत बीतत दिवस निसि भय रहत संकित प्रान है।
निज उदर पूरनहेतु सेवा श्वान वृत्ति समान है॥

[ चारों ओर घूम कर, देख कर ]

अहा ! यही आर्य्य चाणक्य का घर है तो चलूं ( कुछ आगे बढ़ कर और देख कर )।

अहाहा ! यह राजाधिराज श्री मन्त्री जी के घर की सम्पत्ति है। जो—

कहूँ परे गोमय शुष्क कहुँ सिल परी सोभा दै रही।
कहुँ तिल कहूँ जव रासि लागी बटुन जो भिक्षा लही॥
कहुँ कुस परे कहुँ समिध सूखत भार सो ताके नयो।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसो झुकि गयो॥

महाराज चन्द्रगुप्त को भाग्य से ऐसा मन्त्री मिला है—

विन गुनहूँ के नृपन को, धन हित गुरुजन धाइ।
सूखो मुख करि झूठही, बहु गुन कहहि वनाइ॥
पै जिन को तृष्णा नहीं, ते न लवार समान।
तिन सों तृन सम धनिक जन, पावत कवहुँ न मान॥

( देख कर डर से ) अरे आर्य्य चाणक्य यहाँ बैठे है।
जिन्होंने—

लोक धरसि चन्द्रहि कियो, राजा नन्द गिराइ।
होत प्रात रवि के कढ़त, जिमि ससि तेज नसाइ॥

( प्रगट दण्डवत् कर के ) जय हो ! आर्य्य की जय हो !!

चाणक्य—( देख कर ) कौन है वैहीनर ! क्यो आया है ?

कंचुकी—आर्य्य ! अनेक राजगणो के मुकुट माणिक्य से सर्वदा जिन के पदतल लाल रहते हैं उन महाराज चन्द्रगुप्त ने आप के चरणो मे दण्डवत् कर के निवेदन किया है कि "यदि आप के किसी कार्य्य में विघ्न न पड़े तो मैं आप का दर्शन किया चाहता हूँ।"

चाणक्य—वैहीनर ! क्या वृषल मुझे देखा चाहता है ? क्या मैंने कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध कर दिया है यह वृषल नही जानता ?

कंचुकी—आर्य्य, क्यो नहीं।

चाणक्य—( क्रोध से ) हैं ? किस ने कहा, बोल तो ?

कंचुकी—( भय से ) महाराज प्रसन्न हों, जब सुगाँगप्रसाद की अटारी पर गए थे तो देख कर महाराज ने आप ही जान लिया कि कौमुदी महोत्सव अब की नहीं हुआ।

चाणक्य—अरे ठहर, मैंने जाना यह तुम्हीं लोगो ने वृषल का जी मेरी ओर से फेर कर उसे चिढ़ा दिया है, और क्या।

कंचुकी—( भय से नीचा मुँह कर के चुप रह जाता है। )

चाणक्य—अरे राज के कारबारियों का चाणक्य के ऊपर बड़ा ही विद्वेष पक्षपात है। अच्छा, वृषल कहाँ है ? बता।

कंचुकी—( डरता हुआ ) आर्य्य ! सुगाँगप्रसाद को अटारी पर से महाराज ने मुझे आप के चरणों मे भेजा है।

चाणक्य—( उठकर ) कंचुकी ! सुगाँगप्रसाद का मार्ग बता ।

कंचुकी—इधर महाराज ( दोनों घूमते हैं ) ।

कंचुकी—महाराज ! यह सुगाँगप्रसाद की सीढ़ियाँ हैं, चढ़ें ।

( दोनों सुगाँगप्रसाद पर चढ़ते हैं और चाणक्य के घर का परदा गिर के छिप जाता है । )

चाणक्य—चढ़ कर और चन्द्रगुप्त को देख कर प्रसन्नता से आप ही आप ) अहा ! वृषल सिंहासन पर बैठा है—

हीन नन्द सो रहित नृप, चन्द्र करत जेहि भोग ।
परम होत सन्तोष लखि, आसन राजा जोग ॥

( पास जाकर ) जय हो वृषल की !

चन्द्रगुप्त—( उठ कर और पैरों पर गिर कर ) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त दण्डवत् करता है ।

चाणक्य—( हाथ पकड कर उठाकर ) उठो बेटा ! उठो ।

जहँ लो हिमालय के सिखर सुरधुनी-कन सीतल रहैं ।
जहँ लौ बिविध मनिखण्ड-मंडित समुद्र दक्खिन दिसि बहैं ॥
तहँ लौ सबै नृप आइ भय सो तोहि सीस झुकावही ।
तिनके मुकुट-मनि रँगे तुव पद निरखि हम सुख पावही ॥

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! आप की कृपा से ऐसा ही हो रहा है । बैठिए ।

( दोनों यथा स्थान बैठते हैं )

चाणक्य—वृषल ! कहो मुझे क्यों बुलाया है ?

चन्द्रगुप्त—आर्य्य के दर्शन से कृतार्थ होने को ।

चाणक्य—( हँसकर ) भला, बहुत शिष्टाचार हुआ अब बताओ क्यो बुलाया है ? क्योंकि राजा लोग किसी को बेकाम नहीं बुलाते ।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! आप ने कौमुदी-महोत्सव के न होने में क फल सोचा है ?

चाणक्य—( हँसकर ) तो यही उलहना देने को बुलाया है न ?

चन्द्रगुप्त—उलहना देने को कभी नहीं ।

चाणक्य—तो क्यों ?

चन्द्रगुप्त— पूछने को ।

चाणक्य—जब पूछना ही है तब तुमको इससे क्या ? शिष्य को सर्व्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए ।

चन्द्रगुप्त—इस में कोई सन्देह नहीं, पर आप की रुचि बिना प्रयोजन नहीं प्रवृत्त होती, इस से पूछा ।

चाणक्य—ठीक है, तुम ने मेरा आशय जान लिया, बिना प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी ओर कभी फिरती ही नहीं ।

चन्द्रगुप्त—इसी से तो सुनने बिना मेरा जी अकुलाता है ।

चाणक्य—सुनो, अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं— एक राजा के भरोसे, दूसरा मंत्री के भरोसे, तीसरा राजा और मन्त्री दोनो के भरोसे, सो तुम्हारा राज तो केवल सचिव के भरोसे है, फिर इन बातों के पूछने से क्या ? व्यर्थ मुँह दुखाना है, यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जानें ।

( राजा क्रोध से मुँह फेर लेता है )

( नेपथ्य में दो वैतालिक गाते है )

प्रथम वै०—( राग विहाग ) अहो यह सरद सम्भु ह्वै आई ।
काँस फूल फूले चहुँ दिसि तें सोइ मनु भस्म लगाई ॥

चन्द उदित सोइ सीस-अभूषन सोभा लगत सुहाई।
तासो रञ्जित घनपटली सोइ मनु गज खाल बनाई॥
फूले कुसुम मुण्ड माला सोइ सोहत अति धवलाई।
राजहँस सोभा सोइ मानो हास विभव दरसाई॥
अहो यह सरद सम्भु बनि आई।

( और भी )

( राग कलिंगड़ा ) हरौ हरि नयन तुम्हारो बाधा।
सरदागम लखि सेस अंक तें जगे जगत सुभ साधा॥
कछु कछु खुले मुँदे कछु सोभित आलस भरि अनियारे।
अरुन कमल से मद के माते थिर भये जदपि ढरारे॥
सेस-सीस-मनिचमक चकौधन तनिकहुँ नहिं सकुचाही॥
नींद भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमला उर माहीं।
हरौ हरि नैन तुम्हारी बाधा।

रा वै०—( कड़खे की चाल में। )

अहो, जिनको विधि सब जीव सों, बढ़ि दीनो जग काज।
अरे, दान सलिल वारे सदा, जे जीतहि गज राज॥
अहो, झुक्यौ न जिनको मान तें, नृपवर जग सिरताज।
अरे, सहहि न आज्ञा भग जिमि दन्तपात मृगराज॥

( और भी )

अरे, केवल बहु गहिनो पहिरि, राजा होइ न कोय।
अहो, जाकी नहि आज्ञा टरै, सो नृप तुम सम होय॥

चाणक्य—( सुन कर आप ही आप ) भला पहिले ने तो देवता रूप शरद के वर्णन में आशीर्वाद दिया, पर इस दूसरे ने क्या कहा ? ( कुछ सोच कर ) अरे जाना, यह सब राक्षस की करतूत है। अरे दुष्ट राक्षस ! क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो नहीं गया है ?

चन्द्रगुप्त—अजी वैहीनर ! इन दोनो गाने वालों को लाख लाख मोहर दिलवा दो ।

वैहीनर—जो आज्ञा महाराज ( उठ कर जाना चाहता है । )

चाणक्य—वैहीनर, ठहर अभी मत जा । वृषल, यह अर्थ कुपात्र को इतना क्यो देते हो ।

चन्द्रगुप्त—आप मुझे सब बातों में योंही रोक दिया करते हैं, तब यह मेरा राज क्या है बरन उलटा बन्धन है ।

चाणक्य—वृषल ! जो राजा आप असमर्थ होते हैं उनमें इतना ही तो दोष है, इससे जो ऐसी इच्छा हो तो तुम अपने राज का प्रबन्ध आप कर लो ।

चन्द्रगुप्त—बहुत अच्छा, आज से मैने सब काम सम्हाला ।

चाणक्य—इससे अच्छी और क्या बात है, तो मै भी अपने अधिकार पर सावधान हूँ ।

चन्द्रगुप्त—जब यही है तो पहिले मैं पूछता हूँ कि कौमुदीमहोत्सव का निषेध क्यो किया गया ?

चाणक्य—मैं भी यही पूछता हूँ कि उसके होने का प्रयोजन क्या था ?

चन्द्रगुप्त—पहिले तो मेरी आज्ञा का पालन ।

चाणक्य—मैंने भी आप की आज्ञा के अपालन के हेतु ही कौमुदीमहोत्सव का प्रतिषेध किया ।

क्योंकि—

आइ चारहू सिन्धु के, छोरहु के भूपाल ।<br>
जो सासन सिर पै धरैं, जिमि फूलन की माल ॥<br>
तेहि हम जौ कछु टारही, सोउ तुव हित उपदेस ।<br>
जासो तुमरो विनय गुन, जग में बढ़ै नरेस ॥

चन्द्रगुप्त—और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूँ।

चाणक्य—वह भी कहता हूँ।

चन्द्रगुप्त—कहिये।

चाणक्य—शोणोत्तरे! अचलदत्त कायस्थ से कहो कि तुम्हारे पास जो भद्रभट इत्यादिको का लेख पत्र है वह माँगा है।

प्र०—जो आज्ञा (बाहर से पत्र लाकर देता है)

चाणक्य—वृषल! सुनो।

चन्द्रगुप्त—मै उधर ही कान लगाये हूँ।

चाणक्य—(पढ़ता है) स्वस्ति परम प्रसिद्ध नाम महाराज श्री चन्द्रगुप्त देव के साथी जो अब उनको छोड़ कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए है उनका यह प्रतिज्ञापत्र है। पहिला गजाध्यक्ष, भद्रभट, अश्वाध्यक्ष, पुरुषदत्त, महाप्रतिहार चन्द्रभानु का भानजा हिंगुरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त, महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालव के राजा का पुत्र रोहिताक्ष और क्षत्रियो मे सबसे प्रधान विजयवर्म्मा (आपही आप) ये हम सब लोग यहाँ महाराज का काम सावधानी से साधते हैं (प्रकाश) यही इस पत्र में लिखा है। सुना?

चन्द्रगुप्त—आर्य्य! मै इन सबो के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—वृषल! सुनो—वह जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष थे वह रात दिन मद्य, स्त्री और जूआ मे डूब कर अपने

काम से निरे बेसुध रहते थे इससे मैंने उनसे अधिकार लेकर केवल निर्वाह के योग्य जीविका कर दी थी, इससे उदास होकर कुमार मलयकेतु के पास चले गए और वहाँ अपना २ कार्य्य सुना कर फिर उसी पद पर नियुक्त हुए हैं, और हिंगुरात और बलगुप्त ऐसे लालची हैं कि कितना भी दिया पर अन्त में मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे हैं कि यहीं बहुत मिलेगा, और जो आपका लड़कपन का सेवक राजसेन था उसने आपकी थोड़ी ही कृपा से हाथी घोड़ा घर और धन सब पाया, पर इस भय से भाग कर मलयकेतु के पास चला गया कि यह सब छिन न जाय, और वह जो सिंहबलदत्त सेनापति का छोटा भाई भागुरायण है उससे पर्व्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उसने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि "जैसे विश्वासघात करके चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हे भी मार डालेगा इससे यहाँ से भाग चलो" ऐसे ही बहका कर कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आप के बैरी चन्दनदासादिकों को दण्ड हुआ तब मारे डरके मलयकेतु के पास जा रहा, उसने भी यह समझ कर कि इसने मेरे प्राण बचाये और मेरे पिता का परिचित भी है उसको कृतज्ञता से अपना अन्तरंगी मन्त्री बनाया है, और वह जो रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा थे वह ऐसे अभिमानी थे कि जब आप उनके और नातेदारों का आदर करते थे तो वह कुढ़ते थे इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गये, बस यही उन लोगों की उदासी का कारण है।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! जब इन सबके भागने को उद्योग जानते ही थे तो क्यों न रोक रक्खा ?

चाणक्य—ऐसा कर नहीं सके ।

चन्द्रगुप्त—क्या आप इसमें असमर्थ हो गये वा कुछ उसमें भी प्रयोजन था ?

चाणक्य—असमर्थ कैसे हो सकते हैं ? उसमें भी कुछ प्रयोजन ही था ।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य । वह प्रयोजन मैं सुना चाहता हूं ।

चाणक्य—सुनो और भूल मत जाओ ।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! मैं सुनता ही हूं, भूलूंगा भी नहीं, कहिये ।

चाणक्य—अब जो लोग उदास हो गए हैं या बिगड़ गए हैं उन के दो ही उपाय हैं, या तो फिर से उन पर अनुग्रह करें या उन को दण्ड दें और भद्रभट, पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अब उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उनको उन का अधिकार दिया जाय और यह हो नहीं सकता, क्योंकि उन को मृगया, मद्य-पानादिक का जो व्यसन है इससे इस योग्य नहीं हैं कि हाथी घोड़ों को सम्हालें और सब सेना की जड़ हाथी घोड़े ही हैं वैसे ही हिंगुरात, बलगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है क्योंकि उन को सब राज्य पाने से भी सन्तोष न होगा, और राजसेन भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे है ये तो प्रसन्न होई नहीं सकते, और रोहिताक्ष विजयवर्म्मा का तो कुछ पूछना ही नहीं है, क्योंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते हैं और उन का कितना भी मान करो उन्हें थोड़ा ही दिखलाता है तो इस का क्या उपाय है । यह तो

अनुग्रह का वर्णन हुआ, अब दण्ड का सुनिये, कि यदि हम इन सबों को प्रधान पद पाकर के जो बहुत दिनों से नन्दकुल के सर्व्वदा शुभाकांक्षी और साथी रहे दण्ड दे कर दुखी करें तो नन्दकुल के साथियो का हम पर से विश्वास उठ जाय इस से छोड़ ही देना योग्य समझा सो इन्हीं सब हमारे भृत्यों के पक्षपाती बन कर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बड़ी सहायता पा कर और अपने पिता के वध से क्रोधित हो कर पर्व्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगो से लड़ने को उद्यत हो रहा है, सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है उत्सव का समय नहीं, इस से गढ़ के संस्कार के समय कौमुदी-महोत्सव क्या होगा ? यही सोच कर उस का प्रतिषेध कर दिया ।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य ! मुझे अभी इस में बहुत कुछ पूछना है ।

चाणक्य—भली भांति पूछो, क्योंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है ।

चन्द्रगुप्त—यह पूछता हूँ—

चाणक्य—हाँ ! मैं भी कहता हूँ ।

चन्द्रगुप्त—यह कि हम लोगो के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है उसे आप ने भागती समय क्यो नहीं पकड़ा ?

चाणक्य—वृषल ! मलयकेतु के भागने के समय भी दोही उपाय थे या तो मेल करते या दण्ड देते, जो मेल करते तो आधा राज देना पड़ता और जो दण्ड देते तो फिर यह हम लोगो की कृतघ्नता सब पर प्रसिद्ध हो जाती कि इन्हीं लोगो ने पर्व्वत को भी मरवा डाला और जो आधा राज देकर अब मेल कर लें तौ भी उस बिचारे

पर्व्वतक के मारने का पाप हाथ लगे। इस से मलयकेतु को भागते समय छोड़ दिया।

चन्द्रगुप्त—और भला राक्षस इसी नगर में रहता था उस का भी आपने कुछ न किया, इसका क्या उत्तर है ?

चाणक्य—सुनो, राक्षस अपने स्वामी को स्थिर भक्ति से और यहाँ के बहुत दिन के रहने से यहाँ के लोगों का और नन्द के सब साथियों का विश्वास पात्र हो रहा है और उसका स्वभाव सब लोग जान गए हैं और उस मे बुद्धि और पौरुष भी है वैसे ही उस के सहायक भी हैं और कोषबल भी है, इस से जो यह वहाँ रहे तो भीतर के सब लोगों को फोड़ कर उपद्रव करे और जो यहां से दूर रहे तो वह ऊपरी जोड़ तोड़ लगावे पर उन के मिटाने में इतनी कठिनाई न हो इस से उसके जाने के समय उपेक्षा कर दी गई।

चन्द्रगुप्त—तो जब वह यहाँ था तभी उस को वश मे क्यों नही कर लिया ?

चाणक्य—वश क्या कर लें अनेक उपायों से तो वह छाती में गड़े काँटे की भांति निकाल कर दूर किया गया है। उसे दूर करने मे और कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त—तो बल से क्यो नही पकड़ रक्खा ?

चाणक्य—वह राक्षस ऐसा नहीं है, पर जो बल किया जाय तो या तो वह आप मारा जाय या तुम्हारा नाश कर दे; और—

हम खोवें इक महत नर जो वह पावे नाश।<br>
जो वह नासै सैन तुव तौहू जिय अति त्रास॥

तासों छल बल करि बहुत अपने बस करि ताहि।
जिमि गज पकरें सुघर तिमि बांधेंगे हम ताहि॥

चन्द्रगुप्त—मै आपकी बात तो नहीं काट सकता, पर इससे तो मन्त्री राक्षस ही बढ़ चढ़के जान पड़ता है।

चाणक्य—( क्रोध से ) 'आप नहीं' इतना क्यों छोड़ दिया? ऐसा कभी नहीं है। उसने क्या किया है, कहो तो?

चन्द्रगुप्त—जो आप न जानते हो तो सुनिये कि वह महात्मा

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुशलात।
जब लौं जित चाह्यौ रह्यौ धारि सीस पै लात॥
डौंड़ी फेरन के समय निज बल जय प्रगटाय।
मेरे दल के लोग को दीनों तुरत हराय॥
मोहे परिजन रीत सों जाके सब बिनु त्रास।
जो मोपै निज लोकहू आनहि नहि विश्वास॥

चाणक्य—( हँसकर ) वृषल! राक्षस ने यह सब किया?

चन्द्रगुप्त—हाँ हाँ! अमात्य राक्षस ने यह सब किया।

चाणक्य—तो हमने जाना, जिस तरह नन्द का नाश करके तुम राजा हुए वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा।

चन्द्रगुप्त—आर्य्य! यह उपालम्भ आप को नहीं शोभा देता, करनेवाला सब दैव है।

चाणक्य—रे कृतघ्न!

अतिहि क्रोध करि खोलि कै, सिखा प्रतिज्ञा कीन।
सो सब देखत भुव करी, नव नृप नन्द विहीन॥
घिरी स्वान अरु गीध सों भय उपजावनिहारि।
जारि नन्दहू नहि भई, सान्त मसान दवारि॥

चन्द्रगुप्त—यह सब किसी दूसरे ने किया।

चाणक्य—किस ने?

चन्द्रगुप्त—नन्दकुल के द्वेषी दैव ने।

चाणक्य—दैव तो मूर्ख लोग मानते हैं।

चन्द्रगुप्त—और विद्वान् लोग भी यद्वा तद्वा करते हैं।

चाणक्य—( क्रोध नाट्य कर के ) अरे वृषल! क्या नौकरों की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है?

खुली सिखाहू बाँधिवे चञ्चल भे पुनि हाथ।

( क्रोध से पैर पृथ्वी पर पटक कर )

घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ॥
नन्द नसे सो निरुज ह्वै तू फूल्यौ गरवाय।
सो अभिमान मिटाइ हौं तुरतहि तोहि गिराय॥

चन्द्रगुप्त—( घबडा कर ) अरे! क्या आर्य्य को सचमुच क्रोध आ गया!

फर फर फरकत अधरपुट भए नयन जुग लाल।
चढ़ी जाति भौहैं कुटिल स्वाँस तजत जिमि व्याल॥
मनहुँ अचानक रुद्रदृग खुल्यौ त्रितिय दिखरात।
( आवेग सहित )
धरनी धार्‌यो बिनु धसे हा हा किमि पदघात॥

चाणक्य—( नकली क्रोध रोक कर ) तो वृषल! इस कोरी बक-वाद से क्या लाभ है? जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे। ( शस्त्र फेंक कर और उठ कर ) ( आप ही आप ) ह ह ह! राक्षस! यही तुमने चाणक्य को जीतने का उपाय किया।

तुम जानौ चाणक्य सों, नृप चन्दहि लरवाय।
सहजहि लैहैं राज हम, निज बल बुद्धि उपाय॥
सो हम तुमही कहँ छलन, कियो क्रोध परकास।
तुमरोई करिहै उलटि, यह तुव भेद बिनास॥

( क्रोध प्रकट करता हुआ चला जाता है )

चन्द्रगुप्त—आर्य्य वैहीनर! "चाणक्य का अनादर करके आज से हम सब काम काज आप ही सम्हालेंगे," यह लोगो से कह दो।

कंचुकी—( आप ही आप ) अरे! आज महाराज ने चाणक्य के पहले आर्य्य शब्द नही कहा! क्यों? क्या सचमुच अधिकार छीन लिया? वा इसमे महाराज का क्या दोष है!

सचिव दोष सो होत है, नृपहु बुरे तत्काल।
हाथीवान प्रमाद सों, गज कहवावत ब्याल॥

चन्द्रगुप्त—क्यों जी? क्या सोच रहे हो?

कंचुकी—यही महाराज को महाराज शब्द अब यथार्थ शोभा देता है।

चन्द्रगुप्त—( आप ही आप ) इन्ही लोगो के धोखा खाने से आर्य्य का काम होगा। ( प्रगट ) शोणोत्तरे! इस सूखी कलह से हमारा सिर दुखने लगा, इससे शयनगृह का मार्ग दिखलाओ।

प्रतिहारी—इधर आवे महाराज इधर आवें।

चन्द्रगुप्त—( उठ कर चलता हुआ आप ही आप )

गुरु आयसु छल सों कलह, करिहू जीय डराय।
किमि नर गुरुजन सो लरहिं, यहै सोच जिय हाय॥

( सब जाते है—जवनिका गिरती है )

तृतीय अङ्क समाप्त हुआ।

# चतुर्थ अंक

स्थान—मन्त्री राक्षस के घर के बाहर का प्रान्त

( करभक घबड़ाया हुआ आता है )

करभक—अहाहा हा ! अहाहा हा !

अतिसय दुरगम ठाम मैं, सत जोजन सो दूर।
कौन जात है धाइ बिनु, प्रभु निदेस भरपूर॥

अब राक्षस मन्त्री के घर चलूँ ( थका सा घूम कर ) अरे कोई चौकीदार है ? स्वामी राक्षस मन्त्री से जाकर कहो कि 'करभक काम पूरा करके पटने से दौड़ा आता है'।

( दौवारिक आता है )

दौवारिक—अजी ! चिल्लाओ मत, स्वामी राक्षस मन्त्री को राज-काज सोचते २ सिर मे ऐसी बिथा हो गई है कि अब तक सोने के बिछौने से नही उठे, इससे एक घड़ी भर ठहरो, अवसर मिलता है तो मै निवेदन किये देता हूँ। परदा उठता है और सोने के बिछौने पर चिन्ता में भरा राक्षस और शकटदास दिखाई पड़ते है।

राक्षस—( आप ही आप )—

कारज उलटो होत है, कुटिल नीति के जोर।
का कीजै सोचत यही, जागि होय है भोर॥

और भी।

आरम्भ पहिले सोचि रचना वेश की करि लावहीं।
इक बात में गर्भित बहुत फल गूढ़भेद दिखावहीं॥

कारन अकारन सोचि फैली क्रियन कों सकुचावहीं।
जे करहि नाटक बहुत दुख हम सरिस तेऊ पावहीं ॥

और भी वह दुष्ट ब्राह्मण चाणक्य—

दौवारिक—जय जय।

राक्षस—किसी भाँति मिलाया या पकड़ा जा सकता है ?

दौवारिक—अमात्य—

राक्षस—( बाएं नेत्र के फड़कने का अपशकुन देख कर आप ही आप ) 'ब्राह्मण चाणक्य जय जय' और पकड़ा जा सकता है? 'आमात्य' यह उलटी बात हुई और उसी समय असगुन भी हुआ। तौ भी क्या हुआ, उद्यम नहीं छोड़ेंगे ( प्रकाश ) भद्र ! क्या कहता है ?

दौवारिक—अमात्य ! पटने से करभक आया है सो आप से मिला चाहता है।

राक्षस—अभी लाओ।

दौवारिक—जो आज्ञा ( करभक के पास जाकर, उसको संग लेआकर ) भद्र ! मन्त्री जी वह बैठे हैं, उधर जाओ ( जाता है )।

करभक—( मन्त्री को देखकर ) जय हो, जय हो।

राक्षस—अजी करभक ! आओ आओ, अच्छे हो ?—बैठो।

करभक—जो आज्ञा ( पृथ्वी पर बैठ जाता है )।

राक्षस—( आप ही आप ) अरे ! मैंने इसको किस काम का भेद लेने को भेजा था यह भूल जाता है, ( चिन्ता करता है )।

( बेंत हाथ में लेकर एक पुरुष आता है )

पुरुष—हटे रहना—बचे रहना—अजी दूर रहो—दूर रहो, क्या नहीं देखते ?

नृप द्विजादि जिन नरन को, मंगल रूप प्रकास।
ते न नीच मुखहू लखहिं, कैसो पास निवास ॥*

( आकाश की ओर देख कर ) अजी क्या कहा, कि क्यो हटाते हो ? अमात्य राक्षस के सिर मे पीड़ा सुन कर कुमार मलयकेतु उनको देखने को इधर ही आते हैं ( जाता है )।

( भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु आता है )

मलयकेतु—( लम्बी सांस लेकर—आप ही आप ) हा ! देखो पिता को मरे आज दस महीने हुए और व्यर्थ वीरता का अभिमान करके अब तक हम लोगों ने कुछ भी नही किया, वरन तर्पण करना भी छोड़ दिया। या क्या हुआ मैंने तो पहिले यही प्रतिज्ञा की है।

कर वलय उर ताड़त गिरे, आँचरहु की सुधि नहिं परी।
मिलि करहिं आरतनाद हाहा, अलक खुलि रज सो भरी॥
जो शोक सो भइ मात गन की दशा सो उलटाइ है।
करि रिपु जुवतिगन की सोई गति पितहि तृप्त कराइ हैं॥

और भी—

रन मरि पितु ढिग जात हम, बीरन की गति पाइ।
कै माता दृग जल धरत, रिपु जुवती मुख लाइ॥

( प्रकाश ) अजी जाजले ! सब राजा लोगो से कहो कि "मैं बिना कहे सुने राक्षस मन्त्री के पास अकेला जा कर उनको प्रसन्न करूँगा" इससे वे सब लोग उधर ही ठहरें।

कंचुकी—जो आज्ञा ( घूमते घूमते नेपथ्य की ओर देख कर ) अजी राजा लोग ! सुनो—कुमार की आज्ञा है कि मेरे साथ

---

* प्राचीनकाल में आचार्य राजा आदि नीचों को नही देखते थे।

कोई न चले (देख कर आनन्द से), महाराज कुमार! आप देखिये। आप की आज्ञा सुनते ही सब राजा रुक गए—

अति चपल जे रथ चलत ते, सुनि चित्र से तुरतहि भए।
जे खुरन खोदत नभ-पथहि, ते बाजिगन झुकि रुकि गए॥
जे रहे धावत ठिठकि ते, गज मूक घण्टा सह सधे।
मरजाद तुव नहि तजहिं नृपगण, जलधि से मानहुँ बँधे॥

मलयकेतु—अजी जाजले! तुम भी सब लोगो को लेकर जाओ, एक केवल भागुरायण मेरे संग रहे।

कंचुकी—जो आज्ञा (सब को लेकर जाता है)।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! जब मैं यहाँ आता था तो भद्रभट प्रभृति लोगो ने मुझ से निवेदन किया कि "हम राक्षस मन्त्री के द्वारा कुमार के पास नही रहा चाहते, कुमार के सेनापति शिखरसेन के द्वारा रहेगे। दुष्ट मन्त्री ही के डर से तो चन्द्रगुप्त को छोड़ कर यहां सब बात का सुभीता जान कर कुमार का आश्रय लिया है।" सो उन लोगो की बात का मैंने आशय नही समझा*।

भागुरायण—कुमार! यह तो ठोक ही है, क्योकि अपने कल्याण के हेतु सब लोग स्वामी का आश्रय हित और प्रिय के द्वारा करते हैं।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! तो फिर राक्षस मन्त्री तो हम लोगों का परमप्रिय और बड़ा हित है।

---

* चाणक्य के मन्त्र ही से लोगों ने मलयकेतु से ऐसा कहा था।

भागुरायण—ठीक है, पर बात यह है कि अमात्य राक्षस का बैर चाणक्य से है, कुछ चन्द्रगुप्त से नहीं है, इससे जो चाणक्य की बातों से रूठ कर चन्द्रगुप्त उस से मन्त्री का काम ले ले और नन्दकुल की भक्ति से "यह नन्द ही के वंश का है" यह सोच कर राक्षस चन्द्रगुप्त से मिल जाय और चन्द्रगुप्त भी अपने बड़े लोगों का पुराना मन्त्री समझ कर उस को मिला ले, तो ऐसा न हो कि कुमार हम लोगों पर भी विश्वास न करें।

मलयकेतु—ठीक है, मित्र भागुरायण! राक्षस मन्त्री का घर कहाँ है?

भागुरायण इधर कुमार इधर (दोनों घूमते हैं) कुमार! यही राक्षस मन्त्री का घर है—चलिए।

मलयकेतु—चलें (दोनों राक्षस के निकट जाते हैं)

राक्षस—अहा! स्मरण आया (प्रकाश) कहो जी तुम ने कुसुमपुर में स्तनकलस वैतालिक को देखा था?

करभक—क्यों नहीं?

मलयकेतु—मित्र भागुरायण। जब तक कुसुमपुर की बातें हों तब तक हम लोग इधर ही ठहर कर सुनें कि क्या बात होती है क्योंकि—

भेद न कछु जामै खुलै, याही भय सब ठौर।
नृप सों मन्त्री जन कहहिं, बात और की और॥

भागुरायण—जो आज्ञा। (दोनों ठहर जाते हैं)

राक्षस—क्यों जी! काम सिद्ध हुआ?

करभक—अमात्य की कृपा से सब काम सिद्ध ही है!

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! वह कौन सा काम है?

भागुरायण—कुमार! मन्त्री के जी की बातें बड़ी गुप्त हैं। कौन जाने? इस से देखिये अभी सुन लेते हैं कि क्या कहते हैं।

राक्षस—अजी! भली भांति कहो।

करभक—सुनिये—जिस समय आपने आज्ञा दिया कि करभक तुम जाकर वैतालिक स्तनकलस से कह दो कि जब २ चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा भंग करे तब तब तुम ऐसे श्लोक पढ़ो जिस से उसका जी और भी फिर जाय।

राक्षस—हां, तब?

करभक—तब मैंने पटने म जाकर स्तनकलस से आप का सन्देसा कह दिया।

राक्षस—तब?

करभक—इस के पीछे नन्दकुल के विनाश से दुःखी लोगों का जी बहलाने के हेतु चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में कौमुदीमहोत्सव होने की डौंड़ी पिटा दी और उस को बहुत दिन से बिछुड़े हुए मित्रों के मिलाप की भांति पुर के निवासियों ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक स्नेह से मान लिया।

राक्षस—(आँसू भर कर) हा देव नन्द।

जदपि उदित कुमुदन सहित, पाइ चाँदनी चन्द।
तदपि न तुम बिन लसत है, नृपससि! जगदानन्द॥

हाँ फिर क्या हुआ?

करभक—तब चाणक्य दुष्ट ने सब लोगो के नेत्र के परमानन्ददायक उस उत्सव को रोक दिया और उसी समय

स्तनकलस ने ऐसे ऐसे श्लोक पढ़े कि राजा का भी मन फिर जाय।

राक्षस—वाह मित्र स्तनकलस, वाह क्यों न हो! अच्छे समय में भेद बीज बोया है, फल अवश्य होगा। क्योंकि—

नृप रूठैं अचरज कहा, सकल लोग जा सङ्ग।
छोटे हू मानें बुरो, परे रङ्ग मे भङ्ग॥

मलयकेतु—ठीक है (नृप रूठें यह दोहा फिर पढता है।)

राक्षस—हाँ फिर क्या हुआ?

करभक—तब आज्ञा भङ्ग से रुष्ट हो कर चन्द्रगुप्त ने आपकी बड़ी प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य से अधिकार ले लिया।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! देखो, प्रशंसा करके राक्षस में चन्द्रगुप्त ने अपनी भक्ति दिखायी।

भागुरायण—गुण प्रशंसा से बढ़कर चाणक्य का अधिकार लेने से।

राक्षस—क्यों जी, एक कौमुदी-महोत्सव के निषेध ही से चाणक्य चन्द्रगुप्त मे बिगाड़ हुआ कि कोई और कारण भी है?

मलयकेतु—क्यों मित्र भागुरायण! अब और बैर में यह क्या फल निकालैंगे?

भागुरायण—यह फल निकाला है कि चाणक्य बड़ा बुद्धिमान् है, वह व्यर्थ चन्द्रगुप्त को क्रोधित न करावैगा और चन्द्रगुप्त भी उसकी बातें जानता है, वह भी बिना बात चाणक्य का ऐसा अपमान न करेगा, इससे उन लोगो मे बहुत झगड़े से जो बिगाड़ होगा तो पक्का होगा।

करभव—आर्य्य ! और भी कई कारण है ।

राक्षस—कौन ?

करभक—कि जब पहिले यहाँ से राक्षस और कुमार मलयकेतु भागे तब उसने क्यो नही पकड़ा ?

राक्षस—( हर्ष से ) मित्र शकटदास ! अब तो चन्द्रगुप्त हाथ में आ जायगा ।

शकटदास—अब चन्दनदास छूटैगा और आप कुटुम्ब से मिलैंगे, वैसे ही जीवसिद्धि इत्यादि लोग क्लेश से छूटैंगे ।

भागुरायण—( आप ही आप ) हाँ, अवश्य जीवसिद्धि का क्लेश छूटा ।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण ! अब मेरे हाथ चन्द्रगुप्त आवैगा, इसमे इनका क्या अभिप्राय है ?

भागुरायण—और क्या होगा ? यही होगा कि यह चाणक्यसे छूटे चन्द्रगुप्त के उद्धार का समय देखते है ।*

राक्षस—अजी, अब अधिकार छिन जाने पर वह ब्राह्मण कहाँ है ?

करभक—अभी तो पटने ही मे है ।

राक्षस—( घवडा कर ) है ! अभी वही है ? तपोबन नही चला गया ? या फिर कोई प्रतिज्ञा नही का ?

करभक—अब तपोबन जायगा—ऐसा सुनते है ।

राक्षस—( घवडा कर ) शकटदास, यह बात तो काम की नहीं,

---

* राक्षस ने तो "चन्द्रगुप्त हाथ में आवैगा" इस आशय से कहा था कि चन्द्रगुप्त जीता जायगा पर भागुरायण ने भेद करने को मलयकेतु को इसका उलटा अर्थ समझाया ।

देव नन्द को नहि सह्यौ, जिन भोजन अपमान।
सो निज कृत नृप चन्द्र की, बात न सहिहै जान॥

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! चाणक्य के तपोवन जाने वा फिर प्रतिज्ञा करने मे कौन कार्य्यसिद्धि निकाली है?

भागुरायण—कुमार! यह तो कोई कठिन बात नहीं है, इसका आशय तो स्पष्ट ही है कि चन्द्रगुप्त से जितनी दूर चाणक्य रहैगा उतनी ही कार्य्यसिद्धि होगी।

शकटदास—अमात्य! आप व्यर्थ सोच न करे, क्योकि देखे—

सबहि भाँति अधिकार लहि, अभिमानी नृप चन्द।
नहि सहिहै अपमान अब, राजा होइ स्वच्छन्द॥
तिमि चाणक्यहु पाइ दुख, एक प्रतिज्ञा पूरि।
अब दूजो करिहै न कछु, उद्यम निज मद चूरि॥

राक्षस—ऐसा ही होगा। मित्र शकटदास! जाकर करभक को डेरा इत्यादि दो।

शकटदास—जो आज्ञा।

(करभक को लेकर जाता है)

राक्षस—इस समय कुमार से मिलने की इच्छा है।

मलयकेतु—(आगे बढ़कर) मैं आप ही से मिलने को आया हूँ।

राक्षस—(संभ्रम से उठकर) अरे कुमार आप ही आ गए! आइए, इस आसन पर बैठिए।

मलयकेतु—मै बैठता हूँ, आप बिराजिए।

(दोनों बैठते हैं)

मलयकेतु—इस समय सिर की पीड़ा कैसी है?

राक्षस—जब तक कुमार के बदले महाराज कह कर आपको नहीं पुकार सकते तब तक यह पीड़ा कैसे छूटेगी।*

मलयकेतु—आपने जो प्रतिज्ञा की है तो सब कुछ होईगा। परन्तु सब सेना सामन्त के होते भी अब आप किस बातका आसरा देखते हैं ?

राक्षस—किसी बात का नहीं, अब चढ़ाई कीजिए।

मलयकेतु—अमात्य ! क्या इस समय शत्रु किसी सङ्कट में है ?

राक्षस—बड़े।

मलयकेतु—किस सङ्कट में ?

राक्षस—मन्त्री सङ्कट मे।

मलयकेतु—मन्त्री सङ्कट तो कोई सङ्कट नहीं है।

राक्षस—और किसी राजा को न हो तो न हो पर चन्द्रगुप्त को तो अवश्य है।

मलयकेतु—आर्य्य ! मेरी जान में चन्द्रगुप्त को और भी नहीं है।

राक्षस—आप ने कैसे जाना कि चन्द्रगुप्त को मन्त्री-सङ्कट सङ्कट नहीं है ?

मलयकेतु—क्योंकि चन्द्रगुप्त के लोग तो चाणक्य के कारण उससे उदास रहते हैं, जब चाणक्य ही न रहैगा तब उसके सब कामों को लोग और भी सन्तोष से करेंगे।

राक्षस—कुमार, ऐसा नहीं है, क्योंकि यहाँ दो प्रकार के लोग हैं एक चन्द्रगुप्त के साथी, दूसरे नन्दकुल के मित्र, उन में जो चन्द्रगुप्त के साथी है उनको चाणक्य ही

---

* अर्थात चन्द्रगुप्त को जीत कर जब आप को महाराज बना लेंगे तब स्वस्थ होंगे।

से दुःख था नन्दकुल के मित्रों को कुछ दुःख नहीं है, क्योंकि वह लोग तो यही सोचते हैं कि इसी कृतघ्न चन्द्रगुप्त ने राज के लोभ से अपना पितृकुल नाश किया है, पर क्या करें उन का कोई आश्रय नहीं है इस से चन्द्रगुप्त के आसरे पड़े हैं, जिस दिन आप को शत्रु के नाश मे और अपने पक्ष के उद्धार में समर्थ देखेंगे उसी दिन चन्द्रगुप्त को छोड़ कर आप से मिल जायंगे, इस के उदाहरण हमी लोग हैं।

मलयकेतु—आर्य ! चन्द्रगुप्त के हारने का एक यही कारण है कि कोई और भी है ?

राक्षस—और बहुत क्या होंगे एक यही बड़ा भारी है।

मलयकेतु—क्यों आर्य्य ! यही क्यो प्रधान है ? क्या चन्द्रगुप्त और मन्त्रियो से आप अपना काम करने मे असमर्थ है ?

राक्षस—निरा असमर्थ है।

मलयकेतु—क्यो ?

राक्षस—यो कि जो आप राज्य सम्भालते है या जिन का राज राजा और मन्त्री दोनो करते है वह राजा ऐसे हो तो हो; परन्तु चन्द्रगुप्त तो कदापि ऐसा नहीं है। चन्द्रगुप्त एक तो दुरात्मा है दूसरे वह तो सचिव ही के भरोसे सब काम करता है; इससे वह कुछ व्यवहार जानता ही नहीं, तो फिर वह सब काम कैसे कर सकता है ? क्योंकि—

लक्ष्मी करत निवास अति, प्रबल सचिव नृप पाय।
पै निज बाल सुभाव सो, इकहि तजत अकुलाय॥

और भी—

जो नृप बालक सो रहत, सदा सचिव के गोद।
बिन कछु जग देखे सुने, सो नहि पावत मोद॥

मलयकेतु—( आप ही आप ) तो हम अच्छे हैं, कि सचिव के अधिकार में नही ( प्रकाश ) अमात्य! यद्यपि यह ठीक है तथापि जहाँ शत्रु के अनेक छिद्र हैं तहाँ एक इसी सिद्धि से सब काम न निकलेगा।

राक्षस—कुमार के सब काम इसी से सिद्ध होगे। देखिए,

चाणक्य को अधिकार छूट्यौ चन्द्र है राजा नए।
पुर नन्द मे अनुरक्त तुम निज बल सहित चढ़ते भए॥

जब आप हम—( कह कर लज्जा से कुछ ठहर जाता है )

तुव बस सकल उद्यम सहित रन मति करी।
वह कौनसी नृप! बात जो नहिं सिद्धि ह्वै है ता घरी॥

मलयकेतु—अमात्य! जो अब आप ऐसा लड़ाई का समय देखते हैं तो देर करके क्यो बैठे हैं? देखिए—

इन को ऊँचो सीस है, वाको उच्च करार।
श्याम दोऊ वह जल श्रवत, ये गण्डन मधु धार॥
उतै भँवर को शब्द इत, भँवर करत गुंजार।
निज सम तेहि लखि नासि है, दन्तन तोरि कछार॥
सीस सोन सिन्दूर सों, ते मतङ्ग बल दाप।
सोन सहज ही सोखि है, निश्चय जानहु आप॥*

और भी—

गरजि गरजि गंभीर रव, बरसि बरसि मधुधार।
शत्रु नगर गज घेरिहै, घन जिमि बिविध पहार॥

---

* पटना घेरने में सोन उतर कर जाना था।

( शंख उठा कर भागुरायण के साथ जाता है

राक्षस—कोई है ?

( प्रियम्बदक आता है )

प्रियम्बदक—आज्ञा ?

राक्षस—देख तो द्वार पर कौन भिक्षुक खड़ा है ?

प्रियम्बदक—जो आज्ञा ( बाहर जाकर फिर आता है ) अमात्य एक क्षपणक भिक्षुक।

राक्षस—( असगुन जान कर आप ही आप ) पहिले ही क्षपणक का दर्शन हुआ।

प्रियम्बदक—जीव सिद्धि है।

राक्षस—अच्छा, बुलाकर ले आ।

प्रियम्बदक—जो आज्ञा ( जाता है )

( क्षपणक आता है )

क्षपणक—पहिले कटु परिणाम मधु, औषध सम उपदेस।
मोह व्याधि के वैद्य गुरु, जिन को सुनहु निदेस॥

( पास जाकर ) उपासक ! धर्म लाभ हो।

राक्षस—जोतिषी जी, बताओ, अब हम लोग प्रस्थान किस दिन करै ?

क्षपणक—( कुछ सोच कर ) उपासक ! मुहूर्त्त तो देखा। आज भद्रा तो पहर पहिले ही छूट गई है और तिथि भी सम्पूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी है और आप लोगों को उत्तर से दक्षिण जाना है और नक्षत्र भी दक्षिण ही है।

अथये सूरहिं चन्द के, उदये गमन प्रसस्त।
पाइ लगन बुध केतु तौ, उदयो हू भो अस्त ॥*

राक्षस—अजी पहिले तो तिथि नहीं शुद्ध है।

क्षपणक—उपासक !

एक गुनी तिथि होत है, त्यौं चौगुन नक्षत्र।
लगन होत चौंतिस गुनो, यह भाखत सब पंत्र॥
लगन होत है शुभ लगन, छोड़ि क्रूर ग्रह एक।
जाहु चन्द बल देखि कै, पावहु लाभ अनेक॥†

---

* भद्रा छूट गई अर्थात् कल्याण को तो आपने जब चन्द्रगुप्त का पक्ष छोड़ा तभी छोड़ा और संपूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी है अर्थात् चन्द्रगुप्त का प्रताप पूर्ण व्याप्त है। उत्तर नाम, प्राचीन पक्ष छोड़कर दक्षिण अर्थात् यम की दिशा को जाना है। नक्षत्र दक्षिण है अर्थात् आपका वाम (विरुद्ध पक्ष) नक्षत्र और आपका दक्षिण पक्ष ( मलयकेतु ) नक्षत्र ( बिना छत्र के ) है। अथए इत्यादि, तुम जो हो उसकी बुद्धि के अस्त के समय और चन्द्र-गुप्त के उदय के समय जाना अच्छा है अर्थात् चाणक्य की ऐसे समय में जय होगी। लग्न अर्थात् कारण भाव में बुध चाणक्य पड़ा है इससे केतु अर्थात् मलयकेतु का उदय भी है तो भी अस्त ही होगा। अर्थात् इस युद्ध में चन्द्रगुप्त जीतैगा और मलयकेतु हारैगा। 'सूर अथए' इस पद से जीवसिद्धि ने अमङ्गल भी किया। आश्विन पूर्णिमा तिथि, भरणी नक्षत्र, गुरुवार, मेष के चन्द्रमा, मीन लग्न में उसने यात्रा बतलाई। इसमें भरणी नक्षत्र गुरुवार, पूर्णिमा तिथि यह सब दक्षिण की यात्रा में निषिद्ध है। फिर सूर्य्य मृत है चन्द्र जीवित है यह भी बुरा है। लग्न में मीन का बुध पडने से बुरा नीच का होने से बुरा है। यात्रा मे नक्षत्र दक्षिण होने ही से बुरा है।

† अर्थात् मलयकेतु का साथ छोड दो तो तुम्हारा भला हो। वास्तव में चाणक्य के मित्र होने से जीवसिद्धि ने साइत भी उलटी दी। ज्योतिष के

राक्षस—अजी, तुम और जोतिषियों से जाकर झगड़ो।

क्षपणक—आप ही झगड़िये, मैं जाता हूँ।

राक्षस—क्या आप रूठ तो नही गए?

क्षपणक—नही, तुम से जोतिषी नहीं रूसा है।

राक्षस—तो कौन रूसा है?

क्षपणक—(आप ही आप) भगवान्, क्योंकि तुम अपना पक्ष छोड़ कर शत्रु का पक्ष ले बैठे हो (जाता है)

राक्षस—प्रियम्बदक! देख कौन समय है?

प्रियम्बदक—जो आज्ञा (बाहर से ही आता है) आर्य्य! सूर्य्यास्त होता है।

राक्षस—(आसन से उठ कर और देखकर) अहा!

भगवान् सूर्य्य अस्ताचल को चले—

जब सूरज उदयो प्रबल, तेज धारि आकास।
तब उपबन तरुवर सबै, छायानुत भे पास॥
दूर परे ते तरु सबै, अस्त भये रबि ताप।
जिमि धन छिन स्वामिहि तजै, भृत्य स्वारथी आप॥

(दोनों जाते हैं)

इति चतुर्थोऽङ्कः।

---

अनुसार अत्यन्त क्रूरवेला क्रूरग्रह वेध में युद्ध आरम्भ होना चाहिये इसके विरुद्ध सौम्य समय में युद्धयात्रा कही, जिसका फल पराजय है।

# पंचम अंक

( हाथ में मोहर, गहने की पेटी और पत्र लेकर सिद्धार्थक आता है )

सिद्धार्थक—अहाहा !

देसकाल के कलस में, सिंची बुद्धि-जल जौन।
लता-नीति चाणक्य की, बहु फल देहै तौन॥

अमात्य राक्षस के मोहर का, आर्य्य चाणक्य का लिखा हुआ यह लेख और मोहर तथा यह आभूषण की पेटिका लेकर मैं पटने जाता हूँ (नेपथ्य की ओर देख कर) अरे ! यह क्या क्षपणक आता है ? हाय हाय ! यह तो बुरा असगुन हुआ। तो मैं सूरज को देख कर इसका दोष छुड़ा लूँ।

( क्षपणक आता है )

क्षपणक—नमो नमो अर्हन्त को, जो निज बुद्धि प्रताप।
लोकोत्तर की सिद्धि सब, करत हस्तगत आप॥

सिद्धार्थक—भदन्त ! प्रणाम।

क्षपणक—उपासक ! धर्म्म लाभ हो ( भली भाँति देख कर ) आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग कर रक्खा है।

सिद्धार्थक—भदन्त ! तुम ने कैसे जाना ?

क्षपणक—इसमें छिपी कौन बात है ? जैसे समुद्र मे नाव पर सब के आगे मार्ग दिखाने वाला माँझी रहता है, वैसे ही तेरे हाथ में यह लखौटा है।

सिद्धार्थक—अजी भदन्त! भला यह तुम ने ठीक जाना कि मैं परदेश जाता हूँ, पर यह कहो कि आज दिन कैसा है?

क्षपणक—(हँस कर) वाह श्रावक वाह! तुम मूँड़ मुड़ा कर भी नक्षत्र पूछते हो?

सिद्धार्थक—भला अब क्या बिगड़ा है? कहते क्यों नहीं? दिन अच्छा होगा जायँगे, न अच्छा होगा फिर आवेंगे।

क्षपणक—चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो, मलयकेतु के कटक से बिना मोहर भए कोई जाने नहीं पाता।

सिद्धार्थक—यह नियम कब से हुआ?

क्षपणक—सुनो, पहिले तो कुछ भी रोक टोक नहीं थी, पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाय न आवे। इससे जो तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो, क्योंकि पीछे से तुम्हें हाथ पैर न बँधवाना पड़े।

सिद्धार्थक—क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के अन्तरङ्ग खिलाड़ी मित्र हैं? हमें कौन रोक सकता है।

क्षपणक—चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओगे।

सिद्धार्थक—भदन्त! क्रोध मत करो, कहो कि काम सिद्ध हो।

क्षपणक—जाओ, काम सिद्ध होगा, हम भी पटने जाने के हेतु मलयकेतु से मोहर लेने जाते हैं।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक।

( भागुरायण और सेवक आते हैं )

भागुरायण—( आप ही आप ) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है।

कहूँ बिरल कहुँ सघन कहुँ, बिफल कहूँ फलवान।
कहुँ कृस, कहुँ अति थूल कछु, भेद परत नहिं जान॥
कहूँ गुप्त अति ही रहत, कबहूँ प्रकट लखात।
कठिन नीति चाणक्य की, भेद न जान्यो जात॥

( प्रगट ) भासुरक! मलयकेतु से मुझे क्षण भर भी दूर रहने मे दुःख होता है इससे यही बिछौना बिछा तो बैठें।

सेवक—जो आज्ञा—बिछौना बिछा है, विराजिए।

भागुरायण—( आसन पर बैठ कर ) भासुरक! बाहर कोई मुझ से मिलने आवे तो आने देना।

सेवक—जो आज्ञा ( जाता है )।

भागुरायण—( आप ही आप करुणा से ) राम राम! मलयकेतु तो मुझ से इतना प्रेम करता है, मैं उसका बिगाड़ किस तरह करूँगा? अथवा—

जस कुल तजि अपमान सहि, धन हित परबस होय।
जिन बेच्यो निज प्रान तन, सबै सकत करि सोय॥

( आगे आगे मलयकेतु और पीछे प्रतिहारी आते हैं )

मलयकेतु—( आप ही आप ) क्या करें राक्षस का चित्त मेरी ओर से कैसा है यह सोचते हैं तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते हैं, कुछ निर्णय नहीं होता।

नन्दवंश को जानि कै, ताहि चन्द्र की चाह।
कै अपनायो जानि निज, मेरो करत निवाह॥

को हित अनहित तासु को, यह नहिं जान्यो जात।
तासों जिय सन्देह अति, भेद न कछु लखात॥

( प्रगट ) विजये! भागुरायण कहाँ हैं देख तो?

प्रतिहारी—महाराज! भागुरायण वह बैठे हुए आप की सेना के जाने वाले लोगों को राहखर्च और परवाना बाँट रहे हैं।

मलयकेतु—विजये! तुम दबे पाँव से आओ, मैं पीछे से जाकर मित्र भागुरायण की आँखें बन्द करता हूँ।

प्रतिहारी—जो आज्ञा।

( दोनों दबे पाँव से चलते हैं और भासुरक आता है )

भासुरक—(भागुरायण से) बाहर क्षपणक आया है उसको परवाना चाहिए।

भागुरायण—अच्छा, यहाँ भेज दो।

भासुरक—जो आज्ञा (जाता है)।

( क्षपणक आता है )

क्षपणक—श्रावक को धर्म लाभ हो।

भागुरायण—( छल से उसकी ओर देख कर ) यह तो राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है (प्रगट) भदन्त! तुम नगर में राक्षस के किसी काम से जाते होगे।

क्षपणक—( कान पर हाथ रख कर ) छी छी! हम से राक्षस वा पिशाच से क्या काम?

भागुरायण—आज तुम से और मित्र से कुछ प्रेम कलह हुआ है, पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है?

क्षपणक—राक्षस ने कुछ अपराध नहीं किया है, अपराधी तो हम हैं।

भागुरायण—ह ह ह ह। भदन्त! तुम्हारे इस कहने से तो मुझ को सुनने की और भी उत्कण्ठा होती है।

मलयकेतु—( आप ही आप ) मुझ को भी।

भागुरायण—तो भदन्त! कहते क्यों नहीं?

क्षपणक—तुम सुन के क्या करोगे?

भागुरायण—तो जाने दो, हमें कुछ आग्रह नहीं है, गुप्त हो तो मत कहो।

क्षपणक—नहीं उपासक! गुप्त ऐसा नहीं है, पर वह बहुत बुरी बात है।

भागुरायण—तो जाओ, हम तुम को परवाना न देंगे।

क्षपणक—( आप ही आप की भाँति ) जो यह इतना आग्रह करता है तो कह दें ( प्रकट ) श्रावक! निरुपाय होकर कहना पड़ा। सुनो—मैं पहिले कुसुमपुर में रहता था, तब संयोग से मुझ से राक्षस से मित्रता हो गई, फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग करा के विचारे पर्व्वतेश्वर को मार डाला।

मलयकेतु—( आँखों में पानी भर के ) हाय हाय! राक्षस ने हमारे पिता को मारा, चाणक्य ने नहीं मारा। हा!

भागुरायण—हाँ, तो फिर क्या हुआ?

क्षपणक—फिर मुझे राक्षस का मित्र जान कर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझ को नगर से निकाल दिया, तब मैं राक्षस के यहाँ आया, पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझ

को ऐसा काम करने को कहता है कि जिस से मेरा प्राण जाय।

भागुरायण—भदन्त! हम तो यह समझते हैं कि पहिले जो आधा राज देने को कहा था, वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म्म किया, राक्षस ने नहो किया।

क्षपणक—( कान पर हाथ रख कर ) कभी नहीं, चाणक्य तो विष-कन्या का नाम भी नहीं जानता, यह घोर कर्म्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है।

भागुरायण—हाय हाय! बड़े कष्ट की बात है। लो, मुहर तो तुमको देते हैं, पर कुमार को भी यह बात सुनादो।

मलयकेतु—( आगे बढ़ कर )

सुन्यौ मित्र! श्रुति भेद कर, शत्रु कियौ जो हाल।
पिता मरन को मोहि दुख, दुगुन भयो एहि काल॥

क्षपणक—( आप ही आप ) मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन ली तो मेरा काम हो गया ( जाता है )।

मलयकेतु—( दाँत पीस कर ऊपर देख कर ) अरे राक्षस!

जिन तोपै विश्वास करि, सौंप्यौ सब धन धाम।
ताहि मारि दुखदै सबनि, साँचो किय निज नाम॥

भागुरायण—( आप ही आप ) आर्य्य चाणक्य की आज्ञा है कि "अमात्य राक्षस के प्राण को सर्वथा रक्षा करना" इससे अब बात फेरें। ( प्रकाश ) कुमार! इतना आवेग मत कीजिये। आप आसन पर बैठिये तो मैं कुछ निवेदन करूँ।

मलयकेतु—मित्र क्या कहते हो? ( बैठ जाता है )।

भागुरायण—कुमार! बात यह है कि अर्थशास्त्र वालों की मित्रता

और शत्रुता अर्थ ही के अनुसार होती है। साधारण लोगों की भाँति इच्छानुसार नहीं होती। उस समय सर्व्वार्थसिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था तब देव पर्व्वतेश्वर ही कार्य में कंटक थे तो उस कार्य्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं। आप देखिये—

मित्र शत्रु ह्वै जात हैं, शत्रु करहिं अति नेह।
अर्थ-नीति-बस लोगसब, बदलहिं मानहुँ देह॥

इससे राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिये। और जब तक नन्द राज्य न मिले तब तक उस पर प्रकट स्नेह ही रखना नीति सिद्ध है। राज मिलने पर कुमार जो चाहेंगे करेंगे।

मलयकेतु—मित्र! ऐसा ही होगा। तुमने बहुत ठीक सोचा है। इस समय इसके बध करने से प्रजागण उदास हो जाँयगे और ऐसा होने से जय में भी सन्देह होगा।

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य—कुमार की जय हो। कुमार के कटकद्वार के रक्षाधिकारी दीर्घचक्षु ने निवेदन किया है कि "मुद्रा लिये बिना एक पुरुष कुछ पत्र सहित पकड़ा गया है सो उसको एक बेर आप देख लें।"

भागुरायण—अच्छा उसको ले आओ।

पुरुष—जो आज्ञा।

(जाता है और हाथ बाँधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धार्थक—(आप ही आप)

गुन पै रिझवत, दोस सों दूर बचावत जौन।
स्वामि-भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन॥

पुरुष—( हाथ जोड कर ) कुमार ! यही मनुष्य है ।

भागुरायण—( अच्छी तरह देख कर ) यह क्या बाहर का मनुष्य है या यहीं किसी का नौकर है ?

सिद्धार्थक—मैं अमात्य राक्षस का पासवर्ती सेवक हूँ ।

भागुरायण—तो तुम क्यो मुद्रा लिये बिना कटक के बाहर जाते थे ?

सिद्धार्थक—आर्य्य ! काम की जल्दी से ।

भागुरायण—ऐसा कौन काम है जिस के आगे राजाज्ञा का भी कुछ मोल नहीं गिना ?

सिद्धार्थक—( भागुरायण के हाथ में लेख देता है ) ।

भागुरायण—( लेख लेकर देख कर ) कुमार ! इस लेख पर अमात्य राक्षस की मुहर है ।

मलयकेतु—ऐसी तरह से खोल कर दो कि मुहर न टूटे ।

भागुरायण—( पत्र खोल कर मलयकेतु को देता है ) ।

मलयकेतु—( पढता है ) स्वस्ति । यथा स्थान मे कहीं से कोई किसी पुरुष विशेष को कहता है । हमारे विपक्ष को निराकरण करके सच्चे मनुष्य ने सचाई दिखलाई । अब हमारे पहिले के रक्खे हुए हमारे हितकारी चरो को भी जो जो देने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना । यह लोग प्रसन्न होंगे, तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भाँति अपने उपकारी की सेवा करेंगे । सच्चे लोग कहीं नहीं भूलते तो भी हम स्मरण कराते है । इन मे से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते है और कोई राज चाहते है । हमको सत्यवादी ने जो तीन अलङ्कार भेजे सो मिले हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा

है सो लेना। और जबानी हमारे अत्यन्त प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुन लेना *।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! इस लेख का आशय क्या है?

भागुरायण—भद्र सिद्धार्थक! यह लेख किस का है?

सिद्धार्थक—आर्य्य! मैं नहीं जानता।

भागुरायण—धूर्त! लेख लेकर जाता है और यह नहीं जानता कि किस ने लिखा है, और सँदेशा किस से कहैगा?

सिद्धार्थक—(डरते हुए की भाँति) आप से।

भागुरायण—क्यों रे! हम से?

सिद्धार्थक—आप ने पकड़ लिया। हम कुछ नहीं जानते कि क्या बात है।

भागुरायण—(क्रोध से) अब जानेगा। भद्र भासुरक! इस को बाहर लेजाकर जब तक यह सब कुछ न बतलावै तब तक खूब मारो।

पुरुष—जो आज्ञा (सिद्धार्थक को बाहर ले कर जाता है और हाथ में एक पेटी लिये फिर आता है) आर्य्य! उस को मारने के समय उस के बगल में से यह मुहर की हुई पेटी गिर पड़ी।

भागुरायण—(देख कर) कुमार! इस पर भी राक्षस की मुहर है।

मलयकेतु—यही लेख अशून्य करने को होगी। इस की भी मुहर बचा कर हम को दिखलाओ।

---

* यह वही लेख है जिसको चाणक्य ने शकटदास से धोखा देकर लिखवाया था और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर करके सिद्धार्थक को दिया था।

भागुरायण—( पेटी खोल कर दिखलाता है )

मलयकेतु—अरे ! यह तो वही सब आभरण हैं जो हमने राक्षस को भेजे थे *। निश्चय यह चन्द्रगुप्त को लिखा है।

भागुरायण—कुमार ! अभी सब संशय मिट जाता है। भासुरक ! उस को और मारो।

पुरुष— जो आज्ञा ( बाहर जाकर फिर आता है † ) आर्य्य ! हमने उसको बहुत मारा है, अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे।

मलयकेतु—अच्छा, ले आओ।

पुरुष—जो कुमार की आज्ञा ( बाहर जाकर सिद्धार्थक को ले कर आता है )

---

* दूसरा अङ्क पढ़ने से यहाँ की सब कथा खुल जायगी। चाणक्य ने चालाकी करके चन्द्रगुप्त से पर्व्वतेश्वर के आभरण का दान कराया था और अपने ही ब्राह्मणों को दिलवाया था। उन्ही लोगों ने राक्षस के हाथ वह आभरण बेचे जिसके विषय में कि इस पत्र में लिखा है "हमको सत्य-वादी ने तीन अलकार भेजे सो मिले।" जिसमें मलयकेतु को विश्वास हो कि पर्व्वतेश्वर के आभरण राक्षस ने मोल नही लिए किन्तु चन्द्रगुप्त ने उसको भेजे और मलयकेतु ने कञ्चुकी के द्वारा जो आभरण राक्षस को भेजे थे वही इस पेटी में बन्द थे; जिसमें मलयकेतु को यह सन्देह हो कि राक्षस इन आभरणों को चन्द्रगुप्त को भेजता है।

† ऐसे अवसर पर नाटक खेलने वालों को उचित है कि बाहर जाकर बहुत जल्द न चले आवें, और वह जिस कार्य्य के हेतु गये है नेपथ्य में उसका अनुकरण करें। जैसा भासुरक को सिद्धार्थक मारने के हेतु भेजा गया है तो उसको नेपथ्य में मारने का सा कुछ शब्द करके तब फिर आना चाहिए।

सिद्धार्थक—( मलयकेतु के पैरों पर गिर कर ) कुमार ! हम को अभय दान दीजिये ।

मलयकेतु—भद्र ! उठो, शरणागत जन यहां सदा अभय हैं, तुम इस का वृत्तान्त कहो ।

सिद्धार्थक—( उठ कर ) सुनिए । मुझ को अमात्य राक्षस ने यह पत्र दे कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा था ।

मलयकेतु—जबानी क्या कहने को कहा था, वह कहो ।

सिद्धार्थक—कुमार! मुझको अमात्य राक्षस ने यह कहने को कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्म्मा, मलयाधिपति सिहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष, *सिन्धु महाराज सिन्धुसेन और पारसीक पालक मेघाक्ष इन पांच राजाओं से आप से पूर्व मे सन्धि हो चुकी है ।

---

* कश्मीर के राजा के विषय में मुद्राराक्षस के कवि को भ्रम हुआ है यह सम्भव होता है । राजतरगिणी में कोई राजा पुष्कराक्ष नाम का नही है । जिस समय में पाटलिपुत्र मे चन्द्रगुप्त राज्य करता था उस समय कश्मीर में विजय जयेन्द्र सन्धिमान मेघवाहन और प्रवरसेन इन्हीं राजों के होने का सम्भव है । कनिगहम, लैसन, विलसन इत्यादि विद्वानों के मत में सौ बरस के लगभग का अन्तर है, इसी से मैने यहाँ कई राजाओं का सम्भव होना लिखा । इन राजाओं के जीवन इतिहास में पटने तक किसी का आना नही लिखा है और न चन्द्रगुप्त के काल की किसी घटना से उन से सम्बन्ध है । मेघाक्ष मेघवाहन को लिखा हो यह सम्भव हो सकता है । क्योंकि मेघवाहन पहले गान्धार देश का राजा था फिर कश्मीर का राजा हुआ । भ्रम से इसको पारसीकराज लिख दिया हो । या सिल्यूकस का शैलाक्ष अनुवाद न करके मेघाक्ष किया हो । सन्धिमान और प्रवरसेन से सिन्धुसेन निकाला हो । भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमा पर उस समय

इसमें पहिले तीन तो मलयकेतु का राजा चाहते हैं और बाकी दो खजाना और हाथी चाहते हैं। जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़ कर मुझको प्रसन्न किया उसी तरह इन लागों को भी प्रसन्न करना चाहिए। यही राजसंदेश है।

मलयकेतु—(आप ही आप) क्या चित्रवर्म्मादिक भी हमारे द्रोही हैं? तभी राक्षस में उन लोगो की ऐसी प्रीति है। (प्रकाश) विजये! हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते हैं।

प्रतिहारी—जो आज्ञा (जाती है)

---

सिकन्दर के मरने से बड़ा ही गडबड था इससे कुछ शुद्ध वृत्तान्त नहीं मिलता। सम्भव है कि कवि ने जो कुछ उस समय सुना, लिख दिया। वा यह भी सम्भव है कि यह देश और नाम केवल काव्यकल्पना हो। इतिहासों से यह भी विदित होता है कि मेगास्थनिस (Megasthenes) नामक एक राजदूत सिल्यूकस का चन्द्रगुप्त की सभा में आया था। सम्भव है कि इसी का नाम मेघाक्ष लिखा हो। यदि शुद्ध राजतरंगिणी का हिसाब लीजिए तो एक दूसरी ही लड़ मिलती है। इसके मत से ६५३ बरस कलियुग बीते महाभारत का युद्ध हुआ। फिर १०१ बरस में तीन गोनर्द हुए, अब ७५४ ग० क० संवत् हुआ। इसके पीछे १२६६ बरस के राजाओं का वृत्त नहीं मालूम। (२०२० ग० क०) इस समय के ८६७ वर्ष पीछे उत्पलाक्ष, हिरण्याक्ष और हिरण्यकुल इस नाम के राजा हुए। २७६० ग० क० के पास इनका राज आरम्भ हुआ और ७८८७ ग० क० तक रहा। इस वर्ष गत कलि ४९८२ इससे चन्द्रगुप्त का समय २८०० ग० क० हुआ तो उत्पलाक्ष हिरण्य वा हिरण्याक्ष राजा राजतरंगिणीके मत से चन्द्रगुप्त के समय में थे। (राजतरंगिणी प्र० त० २८७ श्लोक से)

( एक परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ चिन्ता की मुद्रा में एक पुरुष के साथ दिखाई पड़ता है ।* )

राक्षस—( आप ही आप ) चन्द्रगुप्त की ओर के बहुत लोग हमारी सेना में भरती हो रहे हैं इससे हमारा मन शुद्ध नहीं है । क्योंकि—

---

"उत्पलाक्ष इति ख्याति पेशलाक्षतया गत ।
तत्सूनुस्त्रिशत सार्द्धात् वर्षाणामवशान्महीम् ॥
तस्यसूनुर्हिरण्याक्षः स्वनामाकपुर व्यधात् ।
क्ष्मा सप्तत्रिंशतवर्षान्सप्तमासाश्च भुक्तवान् ॥
हिरण्यकुलइत्यस्य हिरण्याक्षस्य चात्मजः ।
षष्टि षष्टिच मुकुलस्तत्सूनुरभवत् समा ॥
अथम्लेच्छगणाकीर्णे मडले चंडचेष्टित. ।" इत्यादि ।

यह सम्बन्ध दो तीन बातों से पुष्ट होता है । एक तो यह स्पष्ट सम्भव है कि उत्पलाक्ष का पुष्कराक्ष हो गया हो । दूसरे उन्ही लोगों के समय उस प्रान्त में म्लेच्छों का आना लिखा है । तीसरे इसी समय से गान्धार, बर्बर आदि देशों के लोगों का व्यवहार यहाँ प्रचलित हुआ । इन बातों से निश्चित होता है कि यही उत्पलाक्ष का हिरण्याक्ष पुष्कराक्ष नाम से लिखा है, विरोध केवल इतना ही है कि राजतरंगिणी में चन्द्रगुप्त का वृत्तान्त नहीं है ।

* इस पांचवे अङ्क में चार बेर दृश्य बदला है । पहिले प्रवेशक, फिर भागुरायण का प्रवेश और तीसरा यह राक्षस का प्रवेश, चौथा राक्षस का फिर मलयकेतु के पास जाना । नए नाटकों के अनुसार चार दृश्यों वा गर्भाङ्कों मे इसको बाँट सकते हैं, यथा पहिला दृश्य राजमार्ग, दूसरा युद्ध के डेरों के बीच में मार्ग, तीसरा राक्षस का डेरा, चौथा मलयकेतु का डेरा ।

रहत साध्य ते अन्वित अरु विलसत निज पच्छहिं।
सोई साधन साधक जो नहि छुअत विपच्छहिं ॥
जो पुनि आयु असिद्ध सपच्छ विपच्छहु मे सम।
कछु कहुँ नहि निज पच्छ माँहि जाको है संगम ॥
नरपति ऐसे साधनन को अनुचित अंगीकार करि।
सब भाँति पराजित होत है वादी लौं बहुविधि बिगरि* ॥

---

* न्यायशास्त्र में अनुमान के प्रकरण में किसी पदार्थ को दूसरे पदार्थ के साथ बराबर रहते देखकर व्याप्तिज्ञान होता है कि जहाँ पहला पदार्थ रहता है वहाँ दूसरा अवश्य रहता होगा। जैसा रसोई के घर में अग्नि के साथ धूऐ को बराबर देखकर व्याप्तिज्ञान होता है कि जहाँ धुआँ होगा वहाँ अग्नि भी अवश्य होगी। इसी भाँति और कही भी यदि दूसरे पदार्थ को देखो तो पहिले पदार्थ का ज्ञान होता हैं कि वहाँ भी अग्नि अवश्य होगी। इसी को अनुमिति कहते हैं। जिसकी वाद में सिद्धि करनी हो उसको साध्य कहते है, जैसे अग्नि। जिसके द्वारा सिद्ध हो उसे हेतु और साधन कहते है, जैसे धूम। जहाँ साध्य का रहना निश्चित हो वह सपक्ष कहलाता है, जैसे पाकशाला। जिसमें अनुमिति से साध्य की सिद्धि करनी हो वह पक्ष कहलाता है, जैसे पर्वत। जहाँ साध्य का निश्चय अभाव हो वह विपक्ष कहलाता है, जैसा जलाशय। यहाँ पर कवि ने अपनी न्यायशास्त्र की जानकारी का परिचय देने को यह छन्द बनाया है। जैसे न्यायशास्त्र में वाद करने वाला पूर्वोक्त साधनादिकों को न जान कर स्वपक्ष स्थापन में असमर्थ हो कर हार जाता है, वैसे ही जो राजा (साधक) सेना आदि साधन से अन्वित है और अपने पक्ष को जानता है विपक्ष से बचता है वह जय पाता है। जो आप साध्यों (सेना नीति आदिकों) से हीन (असिद्ध) है और जिसको शत्रु मित्र का ज्ञान नहीं है और जो अपने पक्ष को नहीं समझता और अनुचित साधनों का (अर्थात् शत्रु से मिले हुए लोगों का) अङ्गीकार करता है, वह हारता है। (यह राक्षस ने इसी विचार पर कहाकि चन्द्रगुप्त के लोग इधर बहुत मिले हैं इससे हारने का सन्देह है।) दर्शनों का थोडा सा वर्णन पाठकगण की जानकारी के हेतु पीछे किया जायगा।

वा जो लोग चन्द्रगुप्त से उदास हो गये हैं वही लोग इधर मिले है, मैं व्यर्थ सोच करता हूँ ( प्रगट ) प्रियम्बदक ! कुमार के अनुयायी राजा लोगो से हमारी ओर से कह दो कि अब कुसुम-पुर दिन दिन पास आता जाता है, इस से सब लोग अपनी सेना अलग २ करके जो जहाँ नियुक्त हो वहाँ सावधानी से रहे ।

आगे खस अरु मगध चलें जय ध्वजहि उड़ाए।
यवन और गंधार रहे मधि सैन जमाए ॥
चेदि हून सक राज लोग पीछे सो धावहि ।
कौलूतादिक नृपति कुमारहि घेरे आवहि * ॥

---

* खस हिमालय के उत्तर की एक जाति । कोई विद्वान् तिब्बत कोई लद्दाख को खस देश मानते है । यवन शब्द से मुख्य तात्पर्य यूनान प्रान्त के देशों से है (Bactri, Lovia, Greek) परन्तु पश्चिम की विदेशी और अन्यधर्मी जाति मात्र को मुहाविरे में यवन कहते हैं। गान्धार जिसका अपभ्रंश कन्दहार है । चेदि देश बुन्देलखण्ड । कोई कोई चन्देरी के छोटे शहर को चेदि देश की राजधानी कहते है । हून देश योरोप के तत्काल के किसी असभ्य देश का नाम ( Huns Hungary ) कोई विद्वान् मध्यएशिया में हून देश मानते है । शक को कोई विद्वान् तातार देश कहते हैं और कोई ( Scythians ) को शक कहते है । कोई बलूचिस्तान के पास के देशों को शक देश मानते हैं । कौलूत देश के राजा चित्रवर्मादिक राक्षस के बड़े विश्वस्त थे इसी से कुमार की अगरक्षा इनको दी थी । इन राजाओं के नाम और देश का कुछ और पता मिलने को हम सिकन्दर के विजय की बडी बडी पुस्तकों को देखें। क्योंकि बहुत सी बातें जिनका पता इस देशकी पुस्तकोंसे नही लगता विदेशी पुस्तकें उनको सहजमें बतला देती हैं। इस हेतु यहा तीन अङ्गरेजी पुस्तकोसे हम थोडासा अनुवाद करते हैं—
(1) Alexander the Great and his successors, (2) History of Greece. (3) Plutarch's lives of illustri-

प्रियम्बदक—अमात्य की जो आज्ञा ( जाता है )

( प्रतिहारी आती है ) ।

प्रतिहारी—अमात्य की जय हो। कुमार अमात्य को देखना चाहते है।

राक्षस—भद्र ! क्षण भर ठहरो। बाहर कौन है ?

---

ous men V II "सिकन्दर के सिपाही लोग केवल ऋतु और थकावट ही से नही डरे किन्तु उन्होंने यह भी सुना कि गगा छै सौ फुट गहरी और चार मील चौड़ी है। Ganderites और Praisians के राजागण अस्सी हजार सवार, दो लाख सिपाही, छ· हजार हाथी और आठ हजार रथ सजे हुए सिकन्दर से लडने को तैयार हैं। इतनी सेना मगधदेश में एकत्र होना कुछ आश्चर्य की बात नही, क्योंकि ऐन्द्राकुतस (चन्द्रगुप्त) ने सिल्यूकस को एक ही वेर पाच सौ हाथी दिए थे और एक वेर छः लाख सैना लेकर सारा हिन्दुस्तान जीता था।" यह गान्दरिटस गान्धार और प्रेसिअन फारस प्रान्त के किसी देश का नाम होगा। हम को इन पांच राजाओं में कुलूत और मलय इन दो देशों की विशेष चिन्ता है, इस हेतु इन देशों का विशेष अन्वेषण करके आगे लिखते है—"एक वेर सिकन्दर (Malli) माल्लि वा मल्लि नामक भारत के विख्यात लड़ने वाली जाति से जब वह उनको जीतने को गया था मरते मरते बचा। जव सिकन्दर ने उन लोगों का दुर्ग घेर लिया और दीवार पर के लोगों को अपने शस्त्र मे मार डाला तो साहस करके अकेला दीवार पर चढ कर भीतर कूद पड़ा और वहा शत्रुओं से ऐसा घिर गया कि यदि उसके सिपाही साथ ही न पहुँचते तो वह टुकड़े २ हो जाता।" वह मल्ली देश ही मुद्राराक्षस का मलय देश है, यह सम्भव होता है। यद्यपि अङ्गरेजी वाले यह देश कहा था इसका कुछ वर्णन नहीं करते; किन्तु हिन्दुस्तान से लौटते समय यह देश उसको मिला था, इससे अनुमान होता है कि कही वलूचिस्तान के पास होगा। आगे चल कर फिर लिखते हैं 'नदियों के मुहाने पर पहुँचने के पीछे उसको एक टापू

( एक मनुष्य आता है )

मनुष्य—अमात्य ! क्या आज्ञा है ?

राक्षस—भद्र ! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हमको आभरण पहराया है तब से उन के सामने नंगे अंग जाना हम को उचित नहीं है। इस से जो तीन आभरण मोल लिये हैं उन में से एक भेज दें।

---

मिला; जिसको उसने शिलोसतिस Scilloustis लिखा है पर आरियन (आर्य) लोग उस टापू को किलूता Cillutta कहते हैं।" क्या आश्चर्य है कि यही कुलूत हो। वह लोग यह भी लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने छोटेपन में सिकन्दर को देखा था और उसके विषय में उसने यह अनुमति दी थी कि सिकन्दर यदि स्वभाव अपने वश में रखता तो सारी पृथ्वी जीतता। अब इन पुस्तकों से राजाओं के नाम भी कुछ मिलाइए। पर्व्वतेश्वर और बर्व्वर यह दोनों शब्द Barbarian, बर्बरियन के कैसे पास हैं। काश्मीरादि देश का राजा जिसके पंजाब अति निकट है पुष्कराक्ष ग्रीक लोगों के पोरस शब्द के पास है। पुष्कराक्ष को पुसकरस और उससे पोरस हुआ हो तो क्या आश्चर्य है। प्युकेसतस वा पुसेतस ( जो सिकन्दर के पीछे पारस का गवर्नर हुआ था ) भी पुष्कराक्ष के पास है किन्तु यहां पारस का राजा मेघाक्ष लिखा है। इन राजाओं का ठीक ठीक ग्रीक नाम या जो देश उनका विशाखदत्त ने लिखा उसको यूनानवाले उस समय क्या कहते थे यह निर्णय करना बहुत कठिन है। संस्कृत के शब्द भी यूनानी में इतने बदल जाते हैं जिसका कुछ हिसाब नहीं। चन्द्रगुप्त का ऐन्द्राकोत्तस वा सन्ड्राकोटस पाटलिपुत्र का पालीबोत्रा वा पालीभोत्तरा। तक्षक का तैक्साइल्स। यही बात यदि हम यूनानी शब्दों की संस्कृत के सादृश्यानुसार अनुवाद करें तो उपस्थित होंगी। अलेकजेन्डर एलेकजेन्दर इत्यादि का फारसी सिकन्दर हुआ। हम यदि इन शब्दों को संस्कृत Sanskritised करें तो अलक्षेन्द्र वा

मनुष्य—जो अमात्य की आज्ञा। ( बाहर जाता है आभरण लेकर आता है ) अमात्य ! अलंकार लीजिए।

राक्षस—( अलङ्कार धारण कर के ) भद्र ! राजकुल मे जाने का मार्ग बतलाओ।

प्रतिहारी—इधर से आइए।

राक्षस—अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है।

सेवक प्रभु सों डरत सदाही। पराधीन सपने सुख नाही॥
जे ऊँचे पद के अधिकारी। तिन को मन ही-मन भय भारी॥
सब ही द्वेष बड़न सों करही। अनुछिन कान स्वामि को भरही॥

जिमि जे जनमे ते मरैं, मिले अवसि बिलगाहि।
तिमि जे अति ऊँचे चढ़े, गिरि है संसय नाहि॥

प्रतिहारी—( आगे बढ कर ) अमात्य ! कुमार यह बिराजते है, आप जाइये।

राक्षस—अरे कुमार यह बैठे हैं।

लखत चरन की ओर हू, तऊ न देखत ताहि।
अचल दृष्टि इक ओर ही, रही बुद्धि अवगाहि॥
कर पै धारि कपोल निज, लसत झुको अवनीस।
दुसह काज के भार सों, मनहुँ नमित भो सीस॥

( * आगे बढ कर ) कुमार की जय हो !

---

लक्षेन्द्र वा श्रीकेन्द्र वा श्रीकन्दर वा शिक्षेन्द्र इत्यादि शब्द होंगे। अब कहिए, कहाँ के शब्द कहाँ जा पडे इसी से ठीक ठीक नाम ग्राम का निर्णय होना बहुत कठिन है। केवल शब्दा विद्या के पण्डितों के कुतूहल के हेतु इतना भी लिखा गया।

* यहाँ पर चौथा दृश्य आरम्भ होता है।

मलयकेतु—आर्य्य ! प्रणाम करता हूँ। आसन पर विराजिए।

राक्षस—( बैठता है )।

मलयकेतु—आर्य्य ! बहुत दिनों से हम लोगो ने आप को नहीं देखा।

राक्षस—कुमार। सेना को आगे बढ़ाने के प्रबन्ध में फँसने के कारण हम को यह उपालम्भ सुनना पड़ा।

मलयकेतु—अमात्य ! सैना के प्रयाण का आप ने क्या प्रबन्ध किया है, मैं भी सुनना चाहता हूँ।

राक्षस—कुमार ! आपके अनुयायी, राजा लोगों को यह आज्ञा दी है ( आगे खस अरु मगध इत्यादि छन्द पढता है )।

मलयकेतु—( आप ही आप ) हाँ ! जाना ! जो हमारे नाश करने के हेतु चन्द्रगुप्त से मिले हैं वही हम को घेरे रहेंगे ( प्रकाश ) आर्य्य ! अब कुसुमपुर से कोई आता है या वहाँ जाता है कि नहीं ?

राक्षस—अब यहाँ किसी के आने जाने से क्या प्रयोजन ! पाँच छः दिन में हम लोग ही वहाँ पहुँचेंगे।

मलयकेतु—( आप ही आप ) अभी सब खुल जाता है ( प्रगट ) जो यही बात है तो इस मनुष्य को चिट्ठी ले कर आप ने कुसुमपुर क्यों भेजा था ?

राक्षस—( देख कर ) अरे ! सिद्धार्थक है ? भद्र ! यह क्या ?

सिद्धार्थक—( भय और लज्जा नाट्य कर के ) अमात्य ! हम को क्षमा कीजिये। अमात्य ! हमारा कुछ दोष भी नहीं है। मार खाते खाते हम आप का रहस्य छिपा न सके।

राक्षस—भद्र ! वह कौनसा रहस्य है यह हम को नहीं समझ पड़ता।

सिद्धार्थक—निवेदन करते हैं, मार खाने से ( इतना ही कह लज्जा से नीचा मुंह कर लेता है )

मलयकेतु—भागुरायण ! स्वामी के सामने लज्जा और भय से यह कुछ न कह सकेगा; इससे तुम सब बात आर्य्य से कहो।

भागुरायण—कुमार की जो आज्ञा। अमात्य ! यह कहता है अमात्य राक्षस ने हम को चिट्ठी देकर और संदेश कह कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक ! क्या यह सत्य है ?

सिद्धार्थक—( लज्जा नाट्य करके ) मार खाने के डर से मैंने कह दिया।

राक्षस—कुमार ! मार की डर से लोग क्या नहीं कह देते ?

मलयकेतु—भागुरायण ! चिट्ठी दिखला दो और संदेशा वह अपने मुँह से कहेगा।

भागुरायण—( चिट्ठी खोल कर 'स्वस्ति कहीं से कोई किसी को' इत्यादि पढ़ता है )

राक्षस—कुमार ! कुमार ! यह सब शत्रु का प्रयोग है।

मलयकेतु—लेख अशून्य करने को आर्य्य ने जो आभरण भेजे हैं वह शत्रु कैसे भेजैगा। ( आभरण दिखलाता है )

राक्षस—कुमार ! यह मैंने किसा को नहीं भेजा। कुमार ने यह मुझ को दिया, और मैंने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दिया।

भागुरायण—अमात्य ! ऐसे उत्तम आभरणों का विशेष कर अपने अङ्ग से उतार कर कुमार की दी हुई वस्तु का यह पात्र है ?

मलयकेतु—और संदेश भी बड़े प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुनना यह आर्य्य ने लिखा है।

राक्षस—कैसा संदेश और कैसी चिट्ठी? यह हमारा कुछ नहीं है।

मलयकेतु—तो मुहर किसकी है?

राक्षस—धूर्त्त लोग कपटमुद्रा भी बना लेते है।

भागुरायण—कुमार! अमात्य सच कहते हैं सिद्धार्थक! चिट्ठी किस की लिखी है?

सिद्धार्थक—( राक्षस का मुँह देखकर चुपचाप रह जाता है )।

भागुरायण—चुप मत रहो। जी कड़ा करके कहो।

सिद्धार्थक—आर्य्य! शकटदास ने।

राक्षस—शकटदास ने लिखा तो मानो मैंने ही लिखा।

मलयकेतु–विजये! शकटदास को हम देखा चाहते हैं।

भागुरायण—( आप ही आप ) आर्य्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नहीं करते। जो शकटदास आकर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है यह सब वृत्तान्त कह देगा तो मलयकेतु फिर बहक जायगा। ( प्रकाश ) कुमार! शकटदास अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करेंगे; इससे उनका कोई और लेख मँगा कर अक्षर मिला लिये जायँ।

मलयकेतु—विजये! ऐसा ही करो।

भागुरायण—और मुहर भी आवे।

मलयकेतु—हाँ, वह भी।

कंचुकी—जो आज्ञा ( बाहर जाता है और मुहर और पत्र लेकर आता है ) कुमार! यह शकटदास का लेख और मुहर है।

मलयकेतु—( देख कर और अक्षर और मुहर की मिलान कर के ) आर्य्य ! अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस—( आप ही आप ) अक्षर निस्सन्देह मिलते हैं, किन्तु शकटदास हमारा मित्र है, इस हिसाब से नहीं मिलते तो क्या शकटदास ही ने लिखा अथवा—

पुत्र दार की याद करि, स्वामि भक्ति तजि देत।
छोड़ि अचल जस को करत, चल धन सो जन हेत॥

या इस मे सन्देह ही क्या है ?

मुद्रा ताके हाथ की, सिद्धार्थक हू मित्र।
ताही के कर को लिख्यौ, पत्रहु साधन चित्र॥
मिलि कै शत्रुन सों करन, भेद भूलि निज धर्म।
स्वामि विमुख शकटहि कियो, निश्चय यह खल कर्म॥

मलयकेतु—आर्य्य ! श्रीमान् ने तीन आभरण भेजे, सो मिले, यह जो आप ने लिखा है सो उसी में का एक आभरण यह भी है ? ( राक्षस के पहने हुये आभरण को देखकर आप ही आप ) क्या यह पिता के पहने हुए आभरण हैं ? ( प्रकाश ) आर्य्य ! यह आभरण आपने कहाँ से पाया ?

राक्षस—जौहरी से मोल लिया था।

मलयकेतु—विजये ! तुम इन आभरणो को पहचानती हो ?

प्रतिहारी—( देखकर आँसू भर के ) कुमार ! हम सुगृहीत नामधेय महाराज पर्व्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानेंगी ?

मलयकेतु—( आँखों में आँसू भर के )

भूषण प्रिय ! भूषण सबै, कुल भूषण ! तुम अङ्ग।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन सङ्ग॥

राक्षस—( आप ही आप ) ये पर्व्वतेश्वर के पहिने हुए आभरण है ? ( प्रकाश ) जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियो ने ही बेचा है।

मलयकेतु—आर्य्य ! पिता के पहने हुए आभरण और फिर चन्द्रगुप्त के हाथ पड़े हुए जौहरी बेचें, यह कभी हो नहीं सकता। अथवा हो सकता है।

अधिक लाभ के लोभ सो, क्रूर ! त्यागि सब नेह।
बदले इन आभरन के, तुम बेच्यौ मम देह॥

राक्षस—( आप ही आप ) अरे ! यह दाव तो पूरा बैठ गया।

मम लेख नहिं यह किमि कहैं मुद्रा छपी जब हाथ की।
विश्वास होत न शकट तजि है प्रीति कबहूँ साथ की॥
पुनि बेचि है नृप चन्द भूषण कौन यह पतियाइ है।
तासों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइ है॥

मलयकेतु—आर्य्य हम यह पूछते है।

राक्षस—जो आर्य्य हो उससे पूछो, हम अब पापकारी अनार्य हो गए हैं।

मलयकेतु—स्वामि पुत्र तुव मौर्य हम, मित्र पुत्र सह हेत।
पै हो उत वाको कियो, इत तुम हम कों देत॥
सचिवहु भे उत, दास हो, इत तुम स्वामी आप।
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीनो यह पाप॥

राक्षस—( आंखों मे आंसू भर के ) कुमार ! इस का निर्णय तो आप ही ने कर दिया—

स्वामि पुत्र मम मौर्य्य तुम, मित्र पुत्र सह हेत।
पैहैं उत वाको दियो, इत हम तुम कों देत॥

सचिवहु भे उत दास हो, इत हम स्वामी आप।
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीनो यह पाप॥

मलयकेतु—( चिट्ठी पेटी इत्यादि दिखला कर ) यह सब क्या है ?

राक्षस—( आँखों में आँसू भर के ) यह सब चाणक्य ने नहीं किया, दैव ने किया।

निज प्रभु सों करि नेह जे भृत्य समर्पत देह।
तिन सो अपुने सुत सरिस सदा निबाहत नेह॥
ते गुण गाँहक नृप सबै जिन मारे छन माहिं।
ताही बिधि को दोस यह औरन को कछु नाहिं॥

मलयकेतु—( क्रोध पूर्वक ) अनार्य ! अब तक छल किए जाते हो कि यह सब दैव ने किया।

विष कन्या दै पितु हत्यौ, प्रथम प्रीति उपजाय।
अब रिपु सो मिलि हम सबन, बधन चहत ललचाय॥

राक्षस—( दुःख से आप ही आप ) हाँ ! यह और जले पर नमक है। ( प्रगट कानों पर हाथ रख कर ) नारायण ! दैव पर्व्वतेश्वर का कोई अपराध हमने नहीं किया।

मलयकेतु—फिर पिता को किसने मारा ?

राक्षस—यह दैव से पूछो।

मलयकेतु—दैव से पूछें। जीवसिद्धि क्षपणक से न पूछें ?

राक्षस—(आप ही आप ) क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है ! हाय ! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर लिया ?

मलयकेतु—( क्रोध से ) शिखरसेन सेनापति से कहो कि राक्षस से मिल कर चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करने को पाँच राजे जो हमारा बुरा चाहते हैं, उन में कौलूत चित्रवर्मा

मलयाधिपति सिंहनाद, और काश्मीराधीश पुष्कराक्ष ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इनको भूमि ही में गाड़ दे, और सिन्धुराज सुषेण और पारसीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सेना चाहते हैं सो इन को हाथी ही के पैर के नीचे पिसवा दो।*

पुरुष—जो कुमार की आज्ञा। (जाता है)

मलयकेतु—राक्षस! हम मलयकेतु हैं, कुछ तुम से विश्वासघाती राक्षस नहीं हैं† इससे तुम जाकर अच्छी तरह चन्द्रगुप्त का आश्रय करो।

चन्द्रगुप्त चाणक्य सों, मिलिए सुख सों आप।
हम तीनहुँ को नासि हैं, जिमि त्रिवर्ग कहँ पाप‡॥

भागुरायण—कुमार! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिए। कुसुमपुर घेरने को हमारी सेना चढ़ चुकी है।

उड़िकै तियगन गंड जुगल कहँ मलिन बनावति।
अलिकुल से कल अलकन निज कन धवल छवावति॥
चपल तुरगखुर घात उठी घन घुमड़ि नवीनी।
सत्रु सीस पै धूरि परै गजमद सों भीनी॥

(अपने भृत्यों के साथ मलयकेतु जाता है।)

राक्षस—(घबडा कर) हाय! हाय चित्रवर्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए। हाय! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु को

---

* यही बात ऐथीनियन लोगों ने दारा से कही थी। Wilson कहते हैं कि चाणक्य की आज्ञा से ये राजे सब कैद कर लिये गए थे, मारे नहीं गए थे।

† अर्थात् हम तुम्हारा प्राण नहीं मारते।

‡ जैसे धर्म, अर्थ, काम को पाप नाश कर देता है।

नहीं, मित्रों ही के नाश करने को होती है। अब हम मन्दभाग्य क्या करें ?

जाहिं तपोबन, पै न मन, शांत होत सह क्रोध।
प्रान देहि ? रिपु के जियत, यह नारिन को बोध॥
खींचि खड्ग कर पतंग सम, जाहिं अनल अरि पास।
पै या साहस होइ है, चन्दनदास बिनास॥

( सोचता हुआ जाता है )

पटाक्षेप।

इति पञ्चम अङ्क।

——::❁::——

# छठा अंक

स्थान—नगर के बाहर सड़क

( कपड़ा गहिना पहिने हुए सिद्धार्थक आता है )

सिद्धार्थक—

जलद नील तन जयति जय, केशव केशी काल।<br>
जयति सुजन जन दृष्टि ससि, चन्द्रगुप्त नरपाल॥<br>
जयति आर्य्य चाणक्य की, नीति सहज बल भौन।<br>
बिनहीं साजे सैन नित, जीतत अरि कुल जौन॥

चलो आज पुराने मित्र समिद्धार्थक से भेंट करैं ( घूम कर ) अरे! मित्र समिद्धार्थक आप ही इधर आता है।

( समिद्धार्थक आता है। )

समिद्धार्थक—

मिटत ताप नहिं पान सों, होत उछाह बिनास।<br>
बिना मीत के सुख सबै, औरहु करत उदास॥

सुना है कि मलयकेतु के कटक से मित्र सिद्धार्थक आ गया है। उसी को खोजने को हम भी निकले हैं कि मिले तो बड़ा आनन्द हो। ( आगे बढ़ कर ) अहा! सिद्धार्थक तो यहीं है। कहो मित्र! अच्छे तो हो?

सिद्धार्थक—अहा! मित्र समिद्धार्थक आप ही आ गए। (बढ़ कर) कहो मित्र! क्षेम कुशल तो है?

(दोनों गले से मिलते हैं।)

समिद्धार्थक—भला! यहाँ कुशल कहाँ कि तुम्हारे ऐसा मित्र बहुत दिन पीछे घर भी आया तो बिना मिले फिर चला गया।

सिद्धार्थक—मित्र! क्षमा करो। मुझ को देखते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि इस प्रिय वृत्तान्त को अभी चन्द्रमा सदृश प्रकाशित शोभा वाले परम प्रिय महाराज प्रियदर्शन से जा कर कहो। मैं उसी समय महाराज के पास चला गया और उनसे निवेदन करके यह सब पुरस्कार पाकर तुम से मिलने को तुम्हारे घर अभी जाता ही था।

समिद्धार्थक—मित्र! जो सुनने के योग्य हो तो महाराज प्रियदर्शन से जो प्रिय वृत्तान्त कहा है वह हम भी सुनें।

सिद्धार्थक—मित्र! तुमसे भी कोई बात छिपी है! सुनो! आर्य्य चाणक्य की नीति से मोहित मति होकर उस नष्ट मलयकेतु ने राक्षस को दूर कर दिया और चित्रवर्मादिक पांचों प्रबल राजो को मरवा डाला। यह देखते ही और सब राजे अपने प्राण और राज्य का संशय समझ कर उसको छोड़ कर सैना सहित अपने अपने देश चले गए। जब शत्रु ऐसी निर्वल अवस्था मे हुआ, तो भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष, विजयवर्मा इत्यादि लोगो ने मलयकेतु को कैद कर लिया।

समिद्धार्थक—मित्र! लोग तो यह जानते है कि भद्रभट इत्यादि लोग महाराम चन्द्रश्री को छोड़ कर मलयकेतु से मिल

गए; तो क्या कुकवियों के नाटक की भाँति इसके मुख में और तथा निर्वहण में और बात है* ?

सिद्धार्थक—वयस्य ! सुनो; जैसे दैव की गति नहीं जानी जाती वैसे ही आर्य चाणक्य की जिस नीति को भी गति नही जानी जाती उसको नमस्कार है।

समिद्धार्थक—हाँ ! कहो, तब क्या हुआ ?

सिद्धार्थक—तब इधर से सब सामग्री लेकर आर्य्य चाणक्य बाहर निकले और विपक्ष के शेष राजाओं को निःशेष करके बर्बर लोगो की सब सामग्री लूट ली।

समिद्धार्थक—तो वह सब अब कहां हैं ?

सिद्धार्थक—वह देखो—

स्रवत गंडमद गरब गज, नदत मेघ अनुहार।
चाबुक भय चितवत चपल, खड़े अस्व बहु द्वार॥

समिद्धार्थक—अच्छा, यह सब जाने दो। यह कहो कि सब लोगो के सामने इतना अनादर पाकर फिर भी आर्य्य चाणक्य उसी मन्त्री के काम को क्यो करते हैं ?

सिद्धार्थक—मित्र ! तुम अब तक निरे सीधे साधे बने हो। अरे, अमात्य राक्षस भी आर्य्य चाणक्य की जिन चालो को नही समझ सकते उनको हम तुम क्या समझेंगे।

समिद्धार्थक—वयस्य ! अमात्य राक्षस अब कहाँ हैं ?

सिद्धार्थक—उस प्रलय कोलाहल के बढ़ने के समय मलयकेतु की सैना से निकल कर उन्दुर नामक चर के साथ कुसुम-

* अर्थात् नाटक की उत्तमता यही है कि जिस वर्णन, रीति और रस से आरम्भ हो वैसे ही समाप्त हो, यह नहीं कि पहिले कुछ, पीछे कुछ।

पुर ही की ओर वह आते हैं, यह आर्य्य चाणक्य को समाचार मिला है।

समिद्धार्थक—मित्र ! नन्दराज के फिर स्थापन की प्रतिज्ञा करके स्वनाम तुल्य पराक्रम अमात्य राक्षस, उस काम को पूरा किए बिना फिर कैसे कुसुमपुर आते हैं ?

सिद्धार्थक—हम सोचते हैं कि चन्दनदास के स्नेह से।

समिद्धार्थक—ठीक है, चन्दनदास के स्नेह ही से। किन्तु तुम सोचते हो कि चन्दनदास के प्राण बचेंगे ?

सिद्धार्थक—कहाँ उस दीन के प्राण बचेंगे ? हमी दोनो को वध-स्थान मे ले जाकर उसको मारना पड़ेगा।

समिद्धार्थक—(क्रोध से) क्या आर्य्य चाणक्य के पास कोई घातक नही है कि ऐसा नीच काम हम लोग करें।

सिद्धार्थक—मित्र ! ऐसा कौन है जिसको इस जीवलोक में रहना हो और वह आर्य्य चाणक्य की आज्ञा न माने ? चलो, हम लोग चाँडाल का वेष बना कर चन्दनदास को वधस्थान में ले चलें।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक।

---

बाहरी प्रान्त मे प्राचीन बारी

(फाँसी हाथ में लिए हुए एक पुरुष आता है)

पुरुष—पट गुन सुदृढ़ गुथी मुख फाँसी।
जय उपाय परिपाटी गाँसी ॥

रिपु बन्धन मैं पटु प्रति पोरी।
जय चानक्य नीति की डोरी॥

आर्य चाणक्य के चर उन्दुर ने इसी स्थान में मुझको अमात्य राक्षस से मिलने कहा है। ( देख कर ) यह अमात्य राक्षस सब अङ्ग छिपाये हुए आते है। तब तक इस पुरानी बारी मे छिप कर हम देखें, यह कहाँ ठहरते है। ( छिप कर बैठता है )

( सब अङ्ग छिपाये हुए राक्षस आता है )

राक्षस—( आँखों में आंसू भर के ) हाय! बड़े कष्ट की बात है।

आश्रय बिनसें और पै, जिमि कुलटा तिय जाय।
तजि तिमि नन्दहि चंचला, चन्द्रहि लपटी धाय॥
देखा देखो प्रजहु सब, कीनो ता अनुगौन।
तजि कै निज नृप नेह सब, कियो कुसुमपुर भौन॥
होइ बिफल उद्योग मै, तजि कै कारज भार।
आप्त मित्र हू थकि रहे, सिर बिनु जिमि अहि छार॥
तजि कै निज पति भुवनपति, सुकुल जात नृप नन्द।
श्री वृषली गइ वृषल ढिग, सील त्यागि करि छन्द॥
जाइ तहाँ थिर ह्वै रही, निज गुन सहज बिसारि।
बस न चलत जब बाम विधि, सब कछु देत बिगारि॥
नन्द मरे सैलेश्वरहि, देत चह्यौ हम राज।
सोऊ बिनसे तब कियो, ता सुत हित सो साज॥
बिगर्यौ तौन प्रबन्ध हू, मिट्यौ मनोरथ मूल।
दोष कहा चानक्य को, दैवहि भो प्रतिकूल॥

बाहरे म्लेच्छ मलयकेतु की मूर्खता! जिसने इतना नहीं समझा कि—

मरे स्वामिहू नहि तज्यौ, जिन निज नृप अनुराग।
लोभ छाड़ि दै प्रान जिन, करी सत्रु सों लाग॥
सोई राक्षस सत्रु सों, मिलि है यह अँधेर।
इतनो सूझ्यौ वाहि नहि, दई दैव मति फेर॥

सो अब भी शत्रु के हाथ मे पड़ के राक्षस बन मे चला जायगा, पर चन्द्रगुप्त से सँधि न करेगा। लोग झूठा कहे, यह अपयश हो, पर शत्रु की बात कौन सहेगा? ( चारों ओर देख कर ) हाँ! इसी प्राँत में देव नन्द रथ पर चढ़ कर फिरने आते थे।

इतहि देव अभ्यास हित, सर सजि धनु सँधान।
रचत रहे भुव चित्र सम, रथ सुचक्र परिखानि॥
जहँ नृपगन सँकित रहे, इत उत थमे लखात।
सोई भुव ऊजर भई, दृगन लखी नहि जात॥

हाय! यह मन्द भाग्य अब कहाँ जाय? ( चारों ओर देख कर ) चलो इस पुरानी बारी मे कुछ देर ठहर कर मित्र चन्दनदास का कुछ समाचार लें। ( घूम कर आप ही आप ) अहा! पुरुषो की भाग्यसे उन्नति अवनति की भी क्या क्या गति होती है कोई नहीं जानता।

जिमि नव ससि कहँ सब लखत, निज २ करहि उठाय।
तिमि नृप सब हम को रहे, लखत अनन्द बढ़ाय॥
चाहत हे नृपगन सबै, जासु कृपा दृग कोर।
सो हम इत सँकित चलत, मानहुँ कोऊ चोर॥

वा जिसके प्रसाद से यह सब था, जब वही नही है तो यह होईगा। ( देख कर ) यह पुराना उद्यान कैसा भयानक हो रहा है।

नसे बिपुल नृप कुल सरिस, बड़े बड़े गृह जाल।
मित्र-नास सो साधुजन, हिय सम सूखे ताल॥
तरुवर भे फलहीन जिमि, बिधि बिगरे सब रीति।
तृन सों लोपी भूमि जिमि, मति लहि मूढ़ कुनीति॥
तीछन परसु प्रहार सों, कटे तरोवर गात।
रोअत मिलि पिंडूक सँग, ताके घाव लखात*॥
दुखो जानि निज मित्र कहँ, अहि मन लेत उसास।
निज केंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरु व्रन पास॥
तरुगन को सूख्यौ हियो, छिदे कीट सो गात।
दुखी पत्र फल छाँह बिनु, मनु समान सब जात॥

तो तब तक हम इस शिला पर, जो भाग्यहीनों को सुलभ है, लेटें। (बैठ कर और कान दे कर सुन कर) अरे! यह शंख डंके से मिला हुआ नान्दी शब्द कहाँ हो रहा है?

अति ही तीखन होन सों, फोरत स्रोता कान।
जब न समायो घरन में, तब इत कियो पयान॥
सँख पटह धुनि सों मिल्यौ, भारी मङ्गल नाद।
निकस्यौ मनहुँ दिगन्त की, दूरी देखन स्वाद॥

(कुछ सोच कर) हाँ, जाना। यह मलयकेतु के पकड़े जाने पर राजकुल† (रुक कर) मौर्यकुल को आनन्द देने को हो रहा है।

---

* वृक्ष के खोंढरे में से जो शब्द निकलता है वही मानों वृक्ष रोते हैं और उन वृक्षों पर पेड़की बोलती है वह मानों रोने में वृक्षों का साथ देती हैं।

† जहां ऐसी उक्ति होती है वहां यह ध्वनि है कि मानो "पूर्व में जो कहा था वह ठीक है" रुक कर आग्रह से फिर कुछ और कह दिया।

( आँखों में आंसू भर कर ) हाय ! बड़े दुःख की बात है।

मेरे बिनु अब जीति दल, सत्रु पाइ बल घोर।
मोहि सुनावन हेत ही, कीन्हों शब्द कठोर ।।

पुरुष—अब तो यह बैठे हैं तो अब आर्य चाणक्य की आज्ञा पूरी करें। ( राक्षस की ओर न देख कर अपने गले में फाँसी लगाना चाहता है। )

राक्षस—( देख कर आप ही आप ) अरे यह फाँसी क्यों लगाता है? निश्चय कोई हमारा सा दुखिया है। जो हो पूछें तो सही। ( प्रकाश ) भद्र यह क्या करते हो।

पुरुष—(रोकर ) मित्रों के दुःख से दुखी होकर हमारे ऐसे मन्द-भाग्यो का जो कर्तव्य है।

राक्षस—( आप ही आप ) पहले ही कहा था, कोई हमारा सा दुखिया है। ( प्रकाश ) भद्र* जो अति गुप्त वा किसी विशेष कार्य की बात न हो तो हम से कहो कि तुम क्यो प्राण त्याग करते हो ?

पुरुष—आर्य ! न तो गुप्त ही है न कोई बड़े काम की बात है, परन्तु मित्र के दुःख से मैं अब छिन भर भी ठहर नहीं सकता।

राक्षस—( आप ही आप दुख से ) मित्र की विपत्ति में हम पराए लोगो की भाँति उदासीन हो कर जो देर करते हैं मानो उसमे शीघ्रता करने को यह अपना दुःख करने के बहाने शिक्षा देता है। ( प्रकाश ) भद्र ! जो रहस्य नहीं है तो हम सुना चाहते है कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है ?

---

* यहा संस्कृत में व्यसनि ब्रह्मचारिन् सम्बोधन है।

पुरुष—आप को इसमें बड़ा ही हठ है तो कहना पड़ा। इस नगर में जिष्णुदास नामक एक महाजन है।

राक्षस—( आप ही आप ) वह तो चन्दनदास का बड़ा मित्र है।

पुरुष—वह हमारा प्यारा मित्र है।

राक्षस—( आप ही आप ) कहता है कि वह हमारा प्यारा मित्र है। इस अति निकट सम्बन्ध से इसको चन्दनदास का वृत्तान्त ज्ञात होगा।

पुरुष—( रोकर ) "सो दीन जनों को सब धन देकर वह अब अग्निप्रवेश करने जाता है।" यह सुन कर हम यहाँ आये हैं कि "इस दुःख वार्त्ता सुनने के पूर्व ही अपना प्राण दे दें।

राक्षस—भद्र ! तुम्हारे मित्र के अग्निप्रवेश का कारण क्या है ?

कै तेहि रोग असाध्य भयो कोऊ,
जाको न औषध नाहिं निदान है।

पुरुष—नहीं आर्य्य !

राक्षस—कै विष अग्निहुसो बढ़ि कै,
नृपकोप महा फँसि त्यागत प्रान है।

पुरुष—राम राम ! चन्द्रगुप्त के राज्य मे लोगों को प्राणहिंसा का भय कहाँ ?

राक्षस—कै कोउ सुन्दरी पै हिय देत,
लग्यो हिय माँहि वियोग को बान है।

पुरुष—राम राम ! महाजन लोगो की यह चाल नही, विशेष कर के साधु जिष्णुदास की।

राक्षस—तौ कहँ मित्रहि को दुख वाहू के,
नास को हेतु तुम्हारे समान है।

पुरुष—हाँ, आर्य्य ।

राक्षस—( घवडा कर आप ही आप ) अरे, इस के मित्र का प्रिय मित्र तो चन्दनदास ही है और यह कहता है कि सुहृद् विनाश ही उस के विनाश का हेतु है, इस से मित्र के स्नेह से मेरा चित्त बहुत ही घवड़ाता है । ( प्रकाश ) भद्र ! तुम्हारे मित्र का चरित्र हम सविस्तर सुना चाहते हैं।

पुरुष—आर्य्य ! अब मैं किसी प्रकार से मरने में विलम्ब नहीं कर सकता ।

राक्षस—यह वृत्तान्त तो अवश्य सुनने के योग्य है, इससे कहो ।

पुरुष—क्या करें । आप ऐसा हठ करते हैं तो सुनिए ।

राक्षस—हाँ ! जी लगा कर सुनते है, कहो ।

पुरुष—आप ने सुना ही होगा कि इस नगर में प्रसिद्ध जौहरी सेठ चन्दनदास है ।

राक्षस—( दुःख से आप ही आप ) दैव ने हमारे विनाश का द्वार अव खोल दिया । हृदय ! स्थिर हो, अभी न जानें क्या क्या कष्ट तुम को सुनना होगा । ( प्रकाश ) भद्र ! हमने भी सुना है कि वह साधु अत्यन्त मित्र वत्सल हैं ।

पुरुष—वह जिष्णुदास के अत्यन्त मित्र हैं ।

राक्षस—( आप ही आप ) यह सब हृदय के हेतु शोक का वज्रपात है । ( प्रकाश ) हाँ, आगे ।

पुरुष—सो जिष्णुदास ने मित्र की भाँति चन्द्रगुप्त से वहुत विनय किया ।

राक्षस—क्या क्या ?

पुरुष—कि देव ! हमारे घर मे जो कुछ कुटुम्ब पालन का द्रव्य है। आप सब ले लें, पर हमारे मित्र चन्दनदास को छोड़ दें।

राक्षस—( आप ही आप ) वाह जिष्णुदास ! तुम धन्य हो ! तुम ने मित्र स्नेह का निर्वाह किया।

जो धन के हित नारी तजै पति पूत तजै पितु सीलहि खोई।
भाई सों भाई लरैं रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई॥
ता धन को बनियाँ ह्वै गिन्यौ न दियो दुख मीत सों आरत होई।
स्वारथ अर्थ तुम्हारोई है तुमरे सम और न या जग कोई॥

( प्रकाश ) इस बात पर मौर्य्य ने क्या कहा ?

पुरुष—आर्य्य ! इस पर चन्द्रगुप्त ने उस से कहा कि जिष्णुदास ! हम ने धन के हेतु चन्दनदास को नही दण्ड दिया है। इस ने अमात्य राक्षस का कुटुम्ब अपने घर मे छिपाया, बहुत माँगने पर भी न दिया। अब भी जो यह दे दे तो छूट जाय, नही तो इसको प्राण दण्ड होगा तभी हमारा क्रोध शान्त होगा, और दूसरे लोगों को भी इस से डर होगा। यह कह उस को वधस्थान में भेज दिया। जिष्णुदास ने कहा कि "हम कान से अपने मित्र का अमंगल सुनने के पहिले मर जायँ तो अच्छी बात है" और अग्नि में प्रवेश करने को बन में चले गए हम ने भी इसी हेतु कि उन का मरण न सुनें, यह निश्चय किया कि फाँसी लगा कर मर जायँ और इसी हेतु यहाँ आए हैं।

राक्षस—( घबड़ा कर ) अभी चन्दनदास को मारा तो नहीं ?

पुरुष—आर्य्य ! अभी नही मारा है, बारम्बार अब भी उन से अमात्य राक्षस का कुटुम्ब माँगते हैं, और वह मित्र-

वत्सलता से नहीं देते इसी मे इतना विलम्ब हुआ।

राक्षस—सहर्ष ( आप ही आप ) वाह मित्र चन्दनदास ! वाह ! धन्य ! धन्य !

मित्र परोच्छहु मैं कियो, सरनागत प्रतिपाल।
निरमल जस सिबि* सो लियो, तुम या काल कराल ॥

( प्रकाश ) भद्र ! तुम शीघ्र जाकर जिष्णुदास को जलने से रोको; हम जाकर अभी चन्दनदास को छुड़ाते हैं।

पुरुष—आर्य ! आप किस उपाय से चन्दनदास को छुड़ाइएगा ?

राक्षस—( आतङ्क से खड्ग मियान से खींच कर ) इस दु.ख मे एकान्त मित्र निष्कृप कृपाण से।

---

* शिवि ने शरणागत कपोत के हेतु अपना शरीर दे दिया था।

राजा शिवि जब ९२ यज्ञ कर चुके और आगे फिर प्रारम्भ किया तब इन्द्र को भय हुआ कि अब मेरा पद लेने में आठ यज्ञ बाकी हैं, उस ने अग्नि को कपोत बनाया और आप बाज बन उस के मारने को चला, तब वह भागा हुआ राजा की शरण में गया। राजा ने उसका वचन सुन बाज को देख यज्ञशाला में अपनी गोदी में छिपा लिया और बाज को निवारण किया, बाज बोला कि महाराज ! आप यहां यह क्या अनर्थ करते हैं कि मेरा आहार छीन लिया ? मैं भूख से शरीर को छोड आप को पाप-भागी करूगा। तब राजा ने कहा कि इसे तो नहीं देंगे, इस के पलटे में जो मागेगा सो देंगे, पश्चात् इसके प्रति उत्तर में यह बात ठहरी कि राजा कबूतर के तुल्य तौल के शरीर का मास दे तब हम कबूतर को छोड़ देवें। इस बात पर राजा ने प्रसन्न हो तुला पर एक ओर कपोत को बैठाया दूसरी ओर अपने शरीर का मास काट कर चढाने लगे, परन्तु सब शरीर का मांस काट काट के चढाय दिया तौ भी कबूतर के समान नहीं हुआ। तब राजाने गले पर खड्ग चलाया त्यों ही विष्णु ने हाथ पकड़ अपने लोक को भेज दिया।

समर साध तन-पुलकित नित साथी मम कर को।
रन महँ बारहिं बार परिछ्यो जिन बल पर को॥
बिगत जलद नभ नील खड्ग यह रोस बढ़ावत।
मीत कष्ट सों दुखिहु मोहि रनहित उमगावत॥

पुरुष—सेठ चन्दनदास के प्राण बचने का उपाय मैंने सुना, किन्तु ऐसे टेढ़े समय मे इसका परिणाम क्या होगा, यह मैं नही कह सकता (राक्षस को देख कर पैर पर गिरता है) आर्य! क्या सुगृहीत नामधेय अमात्य राक्षस आप ही हैं? यह मेरा संदेह आप दूर कीजिए।

राक्षस—भद्र! भर्तृकुल विनाश से दुखी और मित्र के नाश का कारण यथार्थ नामा अनार्य राक्षस मै ही हूँ।

पुरुष—(फिर पैर पर गिरता है) धन्य है! बड़ा ही आनन्द हुआ। आपने हमको आज कृतकृत्य किया।

राक्षस—भद्र! उठो। देर करने की कोई आवश्यकता नही। जिष्णुदास से कहो कि राक्षस चन्दनदास को अभी छुड़ाता है।

(खड्ग खींचे हुए, 'समर साध' इत्यादि पढता हुआ इधर उधर टहलता है।)

पुरुष—(पैर पर गिर कर) अमात्यचरण! प्रसन्न हो। मै यह बिनती करता हूँ कि चन्द्रगुप्त दुष्ट ने पहले शकटदास के वध की आज्ञा दी थी। फिर न जानै कौन शकटदास को छुड़ा कर उस को कही परदेश मे भगा ले गया। आर्य शकटदास के वध मे धोखा खाने से चन्द्रगुप्त ने क्रोध कर के प्रमादी समझ कर उन वधिको ही को मार डाला। तब से वधिक जिस किसी को वध स्थान मे ले जाते है और मार्ग में किसी को शस्त्र खींचे हुए

देखते हैं तो छुड़ा ले जाने के भय से अपराधी को बीच ही मे तुरन्त मार डालते हैं। इससे शस्त्र खींचे हुए आप के वहाँ जाने से चन्दनदास की मृत्यु में और भी शीघ्रता होगी ( जाता है )।

राक्षस—( आप ही आप ) उस चाणक्य बटु का नीतिमार्ग कुछ समझ नही पड़ता, क्योकि—

सकट बच्यो जो ता कहे, तो क्यों घातक घात।
जाल भयो का खेल मै, कछु समझयौ नहि जात ॥

(सोच कर) नहि शस्त्र को यह काल यासो मीत जीवन जाइ है।
जौ नीति सोचै या समय तो व्यर्थ समय नसाइ है॥
चुप रहनहू नहि जोग जब मम हित बिपति चन्दन पर्यौ।
तासो बचावन प्रियहि अब हम देह निज विक्रय कर्यौ॥

( तलवार फेंक कर जाता है )

छठा अङ्क समाप्त हुआ।

# सप्तम अंक

स्थान—सूली देने का मसान।

( पहिला चाँडाल आता है )

चाँडाल—हटो लोगो हटो, दूर हो भाइयो, दूर हो। जो अपना प्राण, धन और कुल बचाना हो तो दूर हो। राजा का विरोध यत्नपूर्वक छोड़ो।

करि कै पथ्य विरोध इक, रोगी त्यागत प्रान।
पै विरोध नृप सों किए, नसत सकुल नर जान॥

जो न मानो तो इस राजा के विरोधी को देखो जो स्त्री, पुत्र समेत यहाँ सूली देने को लाया जाता है। ( ऊपर देख कर ) क्या कहा? कि इस चन्दनदास के छूटने का कुछ उपाय भी है? भला इस बिचारे के छूटने का कौन उपाय है? पर हाँ, जो यह मंत्री राक्षस का कुटुम्ब दे दे तो छूट जाय। ( फिर ऊपर देख कर ) क्या कहा कि यह शरणागतवत्सल प्राण देगा पर यह बुरा कर्म्म न करैगा? तो फिर इसकी बुरी गति होगी, क्योंकि बचने का तो वही एक उपाय है।

( कंधे पर सूली रक्खे मृत्यु का कपड़ा पहिने चन्दनदास, उसकी स्त्री और पुत्र, और दूसरा चांडाल आते हैं। )

स्त्री—हाय हाय! जो हम लोग नित्य अपनी बात बिगड़ने के डर से फूँक फूँक कर पैर रखते थे उन्हीं हम लोगों को चोरों की भाँति मृत्यु होती है। काल देवता को

नमस्कार है, जिस को मित्र उदासीन सभी एक से हैं, क्योंकि—

छोड़ि माँस भख मरन भय, जियहि खाइ तृन घास।
तिन गरीब मृग को करहि, निरदय व्याधा नाश॥

( चारों ओर देखकर )

अरे भाई जिष्णुदास! मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते? हाय ऐसे समय में कौन ठहर सकता है?

चं० दा०—( आंसू भर कर ) हाय! यह मेरे सब मित्र बिचारे कुछ नही कर सकते, केवल रोते है और अपने को अकर्मण्य समझ शोक से सूखा सूखा मुँह किये आँसू भरी आँखों से एक टक मेरी ही ओर देखते चले आते है।

दोनो चाँडाल—अजी चन्दनदास! अब तुम फाँसी के स्थान पर आ चुके इससे कुटुम्ब को बिदा करो।

चं० दा०—( स्त्री से ) अब तुम पुत्र को लेकर जाओ, क्योंकि आगे तुम्हारे जाने की भूमि नही है।

स्त्री—ऐसे समय मे तो हम लोगो को बिदा करना उचित ही है क्योंकि आप परलोक में जाते हैं, कुछ परदेश नही जाते ( रोती है )।

चं० दा०—सुनो! मैं कुछ अपने दोष से नही मारा जाता, एक मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते है, तो इस हर्ष के स्थान पर क्यो रोती हो?

स्त्री—नाथ! जो यह बात है तो कुटुम्ब को क्यो बिदा करते हो?

चं० दा०—तो फिर तुम क्या कहती हो?

स्त्री—( आंसू भर कर ) नाथ ! कृपा करके मुझे भी साथ ले चलो।

चं० दा०—हा ! यह तुम कैसी बात कहती हो ? अरे ! तुम इस बालक का मुँह देखो और इस की रक्षा करो, क्योंकि यह बिचारा कुछ भी लोकव्यवहार नहीं जानता। यह किस का मुँह देख कर के जीएगा ?

स्त्री—इस की रक्षा कुलदेवी करेंगी। बेटा ! अब पिता फिर न मिलेंगे इस से मिल कर प्रणाम कर ले।

बालक—( पैरों पर गिर के ) पिता ! मैं आप के बिना क्या करूँगा ?

चं० दा०—बेटा जहाँ चाणक्य न हो वहाँ बसना।

दोनों चाँडाल—( सूली खड़ी कर के ) अजी चन्दनदास ! देखो, सूली खड़ी हुई, अब सावधान हो जाओ।

स्त्री—( रो कर ) लोगो, बचाओ, अरे ! कोई बचाओ।

चं० दा०—भाइयो, तनिक ठहरो ( स्त्री से ) अरे ! अब तुम रो-रो कर क्या नन्दों को स्वर्ग से बुला लोगी ? अब वे लोग यहाँ नहीं हैं जो स्त्रियो पर सर्व्वदा दया रखते थे।

१ चाँडाल—अरे वेणुवेत्रक ! पकड़ इस चन्दनदास को घरवाले आप ही रो पीट कर चले जाँयगे।

२ चाँडाल—अच्छा वज्रलोकम, मैं पकड़ता हूँ।

चं० दा०—भाइयो ! तनिक ठहरो, मैं अपने लड़के से मिल लूँ। ( लड़के को गले लगा कर और माथा सूंघ कर ) बेटा ! मरना तो था ही पर एक मित्र के हेतु मरते हैं इससे सोच मत कर।

पुत्र—पिता ! क्या हमारे कुल के लोग ऐसा ही करते आए हैं ? ( पैर पर गिर पड़ता है। )

२ चाँडाल—पकड़ रे वज्रलोमक। ( दोनों चन्दनदास को पकड़ते हैं )

स्त्री—लोगो बचाओ रे, बचाओ।

( वेग से राक्षस आता है )

राक्षस—डरो मत, डरो मत। सुनो सुनो सेनापति! चन्दनदास को मत मारना क्योंकि—

नसत स्वामिकुल जिन लख्यौ, निज चख सत्रु समान।
मित्र दुःख हू मैं धरथो, निलज होइ जिन प्रान॥
तुम सो हारि बिगारि सब, कढ़ी न जाकी साँस।
ता राक्षस के कंठ में, डारहु यह जम फाँस॥

चं० दा०—( देख कर और आखों में आसू भर कर ) अमात्य! यह क्या करते हो?

राक्षस—मित्र, तुम्हारे सच्चरित्र का एक छोटा सा अनुकरण।

चं० दा०—अमात्य, मेरा किया तो सब निष्फल हो गया, पर आप ने ऐसे समय यह साहस अनुचित किया।

राक्षस—मित्र चंदनदास! उराहना मत दो, सभी स्वार्थी हैं। ( चाडाल से ) अजी! तुम उस दुष्ट चाणक्य से कहो।

दोनों चॉडाल—क्या कहें?

राक्षस—

जिन कलि मै हू मित्र हित, तृन सम छोड़े प्रान।
जाके जस रवि सामुहे, शिवि लस दीप समान॥
जाको अति निर्म्मल चरित, दया आदि नित जानि।
बौद्धहु सब लज्जित भए, परम शुद्ध जेहि मानि॥
ता पूजा के पात्र को, मारत तू धरि पाप।
जाके हितु सो सत्रु तुव, आयो इत मैं आप॥

१ चाँडाल—अरे वेणुवेत्रक ! तू चन्दनदास को पकड़ कर इस मसान के पेड़ की छाया मै बैठ, तब से मन्त्री चाणक्य को मै समाचार दूं कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

२ चाँडाल—अच्छा रे वज्रलोमक ! ( चन्दनदास, स्त्री, बालक और सूली को ले कर जाता है ) ।

१ चाँडाल—( राक्षस को लेकर घूम कर ) अरे ! यहाँ पर कौन है ? नन्दकुल सैनासंचय के चूर्ण करने वाले वज्र से, वैसे ही मौर्य्यकुल में लक्ष्मी और धर्म्म स्थापना करने वाले, आर्य्य चाणक्य से कहो ।

राक्षस—( आप ही आप ) हाय ! यह भी राक्षस को सुनना लिखा था ।

१ चाँडाल—कि आप की नीति ने जिस की बुद्धि को घेर लिया है, वह अमात्य राक्षस पकड़ा गया ।

( परदे में सब शरीर छिपाय केवल मुह खोले चाणक्य आता है )

चाणक्य—अरे कहो कहो ।

किन निज बसनहि मै धरी, कठिन अगिनि की ज्वाल ?
रोकी किन गति वायु की, डोरिन ही के जाल ?
किन गजपति मर्द्दन प्रबल, सिह पीजरा दीन ?
किन केवल निज बाहु बल, पार समुद्रहि कीन ?

१ चाँडाल—परमनीतिनिपुण आप ही ने तो ।

चाणक्य—अजी ! ऐसा मत कहो, वरन "नंदकुलद्वेषी दैव ने" यह कहो ।

राक्षस—( देख कर आप ही आप ) अरे ! क्या यही दुरात्मा वा महात्मा कौटिल्य है ?

सागर जिमि बहु रत्नमय, तिमि सब गुण की खानि।
तोष होत नहिं देखि गुण, बैरी हू निज जानि॥

चाणक्य—( देख कर ) अरे ! यही अमात्य राक्षस है ?

जिस महात्मा ने—

बहु दुख सो सोचत सदा, जागत रैन विहाय।
मेरी मति अरु चन्द्र की, सैनहिं दई थकाय॥

( परदे से बाहर निकल कर ) अजी अजी अमात्य राक्षस ! मैं विष्णुगुप्त आप को दण्डवत् करता हूँ। ( पैर छूता है )

राक्षस—( आप ही आप ) अब मुझे अमात्य कहना तो केवल मुंह चिढ़ाना है ( प्रगट ) अजी विष्णुगुप्त ! मैं चाँडालों से छू गया हूँ इस से मुझे मत छूओ।

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! वह श्वपाक नहीं है, वह आप का जाना सुना सिद्धार्थक नामा राजपुरुष है और दूसरा भी समिद्धार्थक नामा राजपुरुष ही है; और इन्हीं दोनो द्वारा विश्वास उत्पन्न कर के उस दिन शकटदास को धोखा दे कर मैंने वह पत्र लिखवाया था।

राक्षस—( आप ही आप ) अहा ! बहुत अच्छा हुआ कि मेरा शकटदास पर से संदेह दूर हो गया।

चाणक्य—बहुत कहाँ तक कहूँ—

वे सब भद्रभटादि वह, सिद्धार्थक वह लेख।
वह भदन्त वह भूखणहु, वह नट आरत भेख॥
वह दुख चन्दनदास को, जो कछु दियो दिखाय।
सो सब मम ( लज्जा से कुछ सकुच कर )
सो सब राजा चन्द्र को, तुमसो मिलन उपाय॥

देखिए, यह राजा भी आप से मिलने आप ही आते हैं

राक्षस—( आप ही आप ) अब क्या करें ? ( प्रगट ) हाँ ! मैं देख रहा हूं ।

( सेवकों के संग राजा आता है )

राजा—( आप ही आप ) गुरुजी ने बिना युद्ध ही दुर्जय शत्रुका कुल जीत लिया इसमें कोई संदेह नहीं, मैं तो बड़ा लज्जित हो रहा हूं, क्यों कि—

ह्वै बिनु काम लजाय करि, नीचो मुख भरि सोक ।
सोवत सदा निषङ्ग मे, मम बानन के थोक ॥
सोवहिं धनुष उतारि हम, जदपि सकहिं जग जीति ।
जा गुरु के जागत सदा, नीति निपुण गत भीति ॥

( चाणक्य के पास जाकर ) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है ।

चाणक्य—वृषल ! अब सब असीस सची हुई, इससे इन पूज्य अमात्य राक्षस को नमस्कार करो, यह तुम्हारे पिता के सब मन्त्रियों में मुख्य हैं ।

राक्षस—( आप ही आप ) लगाया न इसने सम्बन्ध !

राजा—( राक्षस के पास जाकर ) आर्य्य ! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है ।

राक्षस—( देख कर आप ही आप ) अहा ! यही चन्द्रगुप्त है !

होनहार जाको उदय, बालपने ही जोइ ।
राज लह्यौ जिन बाल गज, जूथाधिप सम होय ॥

( प्रगट ) महाराज ! जय हो ।

राजा—आर्य्य !

तुम्हरे आछत बहुरि गुरु, जागत नीति प्रवीन ।
कहहु कहा या जगत मे, जाहि न जय हम कीन ॥

राक्षस—( आप ही आप ) देखो, यह चाणक्य का सिखाया पढ़ाया मुझसे कैसी सेवकों की सी बात करता है ! नहीं नहीं, यह आपही विनीति है। अहा ! देखो, चन्द्रगुप्त पर डाह के बदले उलटा अनुराग होता है। चाणक्य सब स्थान पर यशस्वी है, क्यों कि—

पाइ स्वामि सतपात्र जौ, मन्त्री मूरख होइ।
तौहू पावै लाभ जस, इत तौ पण्डित दोइ॥
मूरख स्वामी लहि गिरै, चतुर सचिव हू हारि।
नदी तीर तरु जिमि नसत, जारन ह्वै लहि बारि॥

चाणक्य—क्यों अमात्य राक्षस ! आप क्या चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हैं।

राक्षस—इसमें क्या सन्देह है ?

चाणक्य—पर अमात्य ! आप शस्त्र ग्रहण नहीं करते, इससे सन्देह होता है कि आपने अभी राजा पर अनुग्रह नहीं किया, इससे जो सच ही चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हो तो यह शस्त्र लीजिये।

राक्षस—सुनो विष्णुगुप्त ! ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्यों कि हम लोग इस योग्य नहीं; विशेष करके जब तक तुम शस्त्र ग्रहण किये हो तब तक हमारे शस्त्र ग्रहण करने का क्या काम है ?

चाणक्य—भला अमात्य ! आपने यह कहाँ से निकाला, कि हम योग्य हैं और आप अयोग्य हैं ? क्योंकि देखिये—

रहत लगामहि कसे अश्व की पीठ न छोड़त।
खान पान असनान भोग तजि मुख नहि मोड़त॥
छूटे सब सुख साज नींद नहि आवत नयनन।
निसि दिन चौंकत रहत बीर सब भय धरि निज मन॥

वह द्यौदन सों सब छन कस्यौ नृप गजगन अवरेखिए।
रिपुदर्प्प दूर कर अति प्रबल निज महात्मबल देखिये॥

वा इन बातों से क्या! आपके शस्त्र ग्रहण किये विना तो चन्दनदास बचता भी नहीं।

राक्षस—(आप ही आप)

नन्द नेह छूट्यौ नहीं, दास भए अरि साथ।
ते तरु कैसे काटि हैं, जे पाले निज हाथ॥
कैसे करिहैं मित्र पै, हम निज कर सो घात।
अहो भाग्य गति अति प्रबल, मोहि कछु जानि न जात॥

(प्रकाश) अच्छा विष्णुगुप्त! मँगाओ खड्ग "नमस्सर्व्व कार्य्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृतस्नेहाय" देखो मैं उपस्थित हूं।

चाणक्य—(राक्षस को खड्ग देकर हर्ष से) राजन् वृषल! बधाई है बधाई है! अब अमात्य राक्षस ने तुम पर अनुग्रह किया। अब तुम्हारी दिन दिन बढ़ती ही है।

राजा—यह सब आपकी कृपा का फल है।

(पुरुष आता है)

पुरुष—जय हो महाराज की, जय हो महाराज! भद्रभट भागुरायणादिक मलयकेतु को हाथ पैर बाँध कर लाए हैं और द्वार पर खड़े हैं इसमें महाराज की क्या आज्ञा होती है।

चाणक्य—हां, सुना। अजी! अमात्य राक्षस से निवेदन करो अब सब काम वही करेंगे।

राक्षस—(आप ही आप) कैसे अपने वश मे करके मुझी से कहलाता है। क्या करें? (प्रकाश) महाराज, चन्द्रगुप्त!

यह तो आप जानते ही हैं कि हम लोगों का मलयकेतु का कुछ दिन तक सम्बन्ध रहा है। इससे उसके प्राण तो बचाने ही चाहिए।

राजा—( चाणक्य का मुह देखता है )

चाणक्य—महाराज ! अमात्य राक्षस की पहिली बात तो सर्व्वथा माननी ही चाहिये ( पुरुष से ) अजी ! तुम भद्रभटादिकों से कह दो कि "अमात्य राक्षस के कहने से महाराज चन्द्रगुप्त मलयकेतु को उसके पिता का राज्य देते है" इससे तुम लोग संग जाकर उसको राज पर बिठा आओ।

पुरुष—जो आज्ञा।

चाणक्य—अजी अभी ठहरो, सुनो ! विजयपाल दुर्गपाल से यह कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र ग्रहण से प्रसन्न हो कर महाराज चन्द्रगुप्त यह आज्ञा करते है कि "चन्दन दास को सब नगरो का जगत्सेठ कर दो।"

पुरुष—जो आज्ञा। ( जाता है )

चाणक्य—चन्द्रगुप्त ! अब और मैं क्या तुम्हारा प्रिय करूं ?

राजा—इससे बढ़ कर और क्या भला होगा ?

मैत्री राक्षस सो भई, मिल्यौ अकंटक राज।
नन्द नसे सब अब कहा, यासों बढ़ि सुखसाज ॥

चाणक्य—( प्रतिहारी से ) विजये ! दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि "अमात्य राक्षस के मेल से प्रसन्न हो कर महाराज चन्द्रगुप्त आज्ञा करते हैं कि हाथी, घोड़ों को छोड़ कर और सब बंधुओ का बन्धन छोड़ दो" वा जब अमात्य

राक्षस मन्त्री हुए तब अब हाथी, घोड़ों का क्या सोच है? इससे—

छोड़ौ सब गज तुरग अब, कछु मत राखौ बाँधि।
केवल हम बाँधत सिखा, निज परतिज्ञा साधि॥

( शिखा बाँधता है )

प्रतिहारी—जो आज्ञा ( जाता है )।

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! मैं इस से बढ़ कर और कुछ भी आप का प्रिय कर सकता हूँ?

राक्षस—इस से बढ़ कर और हमारा क्या प्रिय होगा? पर जो इतने पर भी सन्तोष न हो तो यह आशीर्वाद सत्य हो—

वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानु रूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटिम्प्रलयपरिगता शिश्रिये भूत धात्री॥
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवरं राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीम्पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः॥"

( सब जाते हैं )

सप्तम अंक समाप्त हुआ।

॥ इति ॥

---

# उपसंहार क
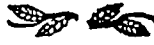
इस नाटक मे आदि अन्त तथा अङ्कों के विश्रामस्थल मे रंग-शाला में ये गीत गाने चाहिएँ। यथा—

( सब के पूर्व मङ्गलाचरण में )

( ध्रुपद चौताला )

जय जय जगदीस राम, श्याम धाम पूर्ण काम, आनंद घन ब्रह्म विष्णु, सत् चित सुखकारी। कंस रावनादि काल, सतत प्रनत भक्तपाल, सोभित गल मुक्तमाल, दीनतापहारी॥ प्रेम भरन पाप हरन, असरन जन सरन चरन, सुखहि करन दुखहि दरन, वृन्दाबन-चारी। रमावास जगनिवास, राम रमन समनत्रास, बिनवत हरि-चन्ददास, जय जय गिरिधारी॥ १॥

( प्रस्तावना के अन्त में प्रथम अङ्क के आरम्भ में )

(चाल लखनऊ की ठुमरी "शहजादे आलम तेरे लिये" इस चाल की)

जिनके हितकारक पण्डित हैं तिनकों कहा सत्रुन को डर है।
समुझैं जग में सब नीतिन्ह जो तिन्हैं दुर्ग बिदेस मनो घर है॥
जिन मित्रता राखी है लायक सो तिनकों तिनकाहू महा सर है।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं तिनकी जय ही सब हो थर है॥२॥

( प्रथम अङ्क की समाप्ति और दूसरे अङ्क के आरम्भ में )

जग मैं घर की फूट बुरी। घर की फूटहि सों बिनसाई सुबरन लंकपुरी॥ फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो। जाको घाटो या भारत मैं अब लौं नहि पुजयो॥ फूटहि सों जयचन्द बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होइ गुलाम॥ फूटहि सों नवनन्द बिनासे गयो मगध को राज। चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सह साज॥ जो जग मैं धन मान और बल अपुनो राखन होय। तो अपुने घर मै भूलेहू फूट करौ मति कोय॥३॥

( दूसरे अङ्क की समाप्ति और तीसरे अङ्क के आरम्भ में )

जग मै तेई चतुर कहावें। जे सब विधि अपने कारज को नीकी भाँति बनावें॥ पढ्यौ लिख्यौ किन होइ जुपै नहि कारज साधन जानै। ताही कों मूरख या जग मै सब कोऊ अनुमानै॥ छल मैं पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहु गायो। पै अरि सों छल किए दोष नहि मुनियन यहै बतायो॥४॥

( तीसरे अङ्क की समाप्ति और चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में )

ठुमरी—तिन को न कछू कबहूँ बिगरे, गुरु लोगन को कहनो जे करें। जिन कों गुरु पन्थ दिखावत हैं ते कुपन्थ पै भूलि न पाँव धरें॥ जिन को गुरु रच्छत आप रहे ते बिगारे न बैरिन के बिगरें। गुरु को उपदेस सुनौ सब ही, जग कारज जासो सबै समरें॥५॥

( चतुर्थ अङ्क की समाप्ति और पञ्चम अङ्क के आरम्भ में )

पूरबी—करि मूरख मित्र मिताई, फिर पछतैहौ रे भाई। अंत दगा खैहौ सिर धुनिहौ रहिहौ सबै गँवाई॥ मूरख जो कछु हितहु करै तो तामैं अन्त बुराई। उलटो उलटो काज करत सब दैहै अन्त नसाई। लाख करौ हित मूरख सो पै ताहि न कछु

समझाई। अन्त बुराई सिर पै ऐहै रहि जैहो मुँह बाई॥ फिर पछितैहो रे भाई॥ ६॥

( पञ्चम अङ्क की समाप्ति और ६ठ अङ्क के आरम्भ में )

काफी ताल होली का

छलियन सो रहो सावान नहि तो पछताओगे। इनकी बातन मै फँसि रहिहौ सबहि गँवाओगे॥ स्वारथ लोभी जन सो आखिर दगा उठाओगे। तब सुख पैहो जब साँचन सो नेह बढ़ाओगे॥ छलियन सो० ॥ ७॥

( छटे अक की समाप्ति और सातवें अक के आरम्भ मे )

( 'जिन के मन में सियाराम बसें' इस धुन की )

जग सूरज चन्द टरैं तो टरै पै न सज्जन नेहु कबौ बिचलै। धन संपति सर्वस गेह नसौ नहि प्रेम की मेड़ सो एड़ टलै॥ सतवादिन को तिनका सम प्रान रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै। निज मीत की प्रीत प्रतीत रहौ क और सबै जग जाउ भलै॥ ८॥

( अन्त मे गाने को )

( विहाग—श्लोक के अर्थ अनुसार )

हरौ हरि रूप सबै जग बाधा। जा सरूप सों धरनि उधारी निज जन कारज साधा॥ जिमि तब दाढ़ अग्र लै राखी महि हति असुर गिरायो। कल्क दृष्टि म्लेच्छन हूँ तिमि किन अब लौं मारि नसायो॥ आरज राज रूप तुम तासो माँगत यह बरदाना। प्रजा कुमुदगन चन्द्र नृपति को करहु सकुल कल्याना॥ ९॥

( विहाग ठुमरी )

पूरी अमी की कटोरिया सा चिरजीओ सदा विकटोरिया रानी। सूरज चन्द प्रकाश करें जब लौ रहै सात हूँ सिन्धु में

पानी॥ राज करो सुख सों तबलौं निज पुत्र औ पौत्र समेत सयानी। पालौ प्रजागन कों सुख सों जग कीरति गान करें गुन गानी॥ १०॥

कलिगड़ा—लहो सुख सब बिधि भारतवासी। विद्या कला जगत की सीखौ तजि आलस की फाँसी॥ अपनो देस धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी। उद्यम करिकै होहु एक मति निज बल बुद्धि प्रकासी॥ पंचपीर की भगति छाड़ि कै ह्वै हरिचरन उपासी। जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुनरासी॥

है, किन्तु देखने में नहीं आई। महाराज तंजोर के पुस्तकालय में व्यासराज यज्वा की एक टीका और है।

चन्द्रगुप्त * की कथा विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों में और वृहत्कथा में वर्णित है। कहते हैं कि विकटपल्ली के राजा चन्द्रदास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है।

महानन्द अथवा महापद्मनन्द भी शूद्रा के गर्भ से था, और कहते हैं कि चन्द्रगुप्त इसकी एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था। यह पूर्व पीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में यहां कुछ लिखना अवश्य हुआ। सूर्यवंशी सुदर्शन † राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व में इस नगर को बसाया। कहते हैं कि कन्या को बंध्यापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उसका नाम पाटलिपुत्र रक्खा था। वायुपुराण में जरासन्ध के "पूर्व पुरुष वसु राजा ने विहार प्रान्त का राज्य संस्थापन किया" यह लिखा है। कोई कहते हैं कि "वेदों में जिस वसु के यज्ञ का वर्णन है वही राज्यगिरि राज्य का संस्थापक है।" (जो लोग चरणाद्रि को राजगृह का पर्वत बतलाते हैं उनका केवल भ्रम है।) इस राज्य का

* प्रियदर्शी, प्रियदर्शन, चन्द्र, चन्द्रगुप्त, श्रीचन्द्र, चन्द्रश्री, मौर्य यह सब चन्द्रगुप्त के नाम हैं; और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रोमिल वा द्रोहिण अंशुल, कौटिल्य, यह सब चाणक्य के नाम हैं।

† सुदर्शन, सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामान्तर था। किसी २ ने भ्रम से पाटली को शूद्रक की कन्या लिखा है।

प्रारम्भ चाहे जिस तरह हुआ हो, पर जरासन्ध ही के समय से यह प्रख्यात हुआ। मार्टिन साहब ने जरासन्ध ही के विषय मे एक अपूर्व्व कथा लिखी है। वह कहते हैं कि जरासन्ध दो पहाड़ियों पर दो पैर रखकर द्वारका में जब स्त्रियां नहाती थी तो ऊँचा हो कर उनको घूरता था। इसी अपराध पर श्रीकृष्ण ने उसको मरवा डाला !!!

मगध शब्द मग से बना है। कहते हैं कि "श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्ठान करने को बुलाया था और वे जिस देश में बसे उसकी मगध सञ्ज्ञा हुई।" जिन अङ्गरेज विद्वानों ने 'मगध देश' शब्द को मद्ध (मध्यदेश) का अपभ्रंश माना है उन्हें शुद्ध भ्रम हो गया है। जैसा कि मेजर विल्फर्ड पालीबोत्रा को राजमहल के पास गङ्गा और कोसी के सङ्गम पर बतलाते और पटने का शुद्ध नाम पद्मावती कहते हैं। यों तो पाली इस नाम के कई शहर हिन्दुस्तान मे प्रसिद्ध हैं किन्तु पालीबोत्रा पाटलिपुत्र ही है। सोन के किनारे मावलीपुर एक स्थान है जिसका शुद्ध नाम महाबलीपुर है। महाबली नन्दका नामान्तर भी है, इसी से और वहाँ प्राचीन चिन्ह मिलने से कोई कोई शँका करते हैं, कि बलीपुर वा बलीपुत्र का पालीबोत्रा अपभ्रंश है, किन्तु यह भी भ्रम ही है। राजाओ के नाम से अनेक ग्राम बसते हैं इस मे कोई हानि नही, किन्तु इन लोगो की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी।

कुछ विद्वानों का मत है कि मग लोग मिश्र से आये और यहाँ आकर Isiris और Osiris नामक देव और देवी की पूजा प्रचलित की। यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश बोध होते

हैं। किसी पुराण में "महाराज दशरथ ने शाकद्वीपियों को बुलाया" यह लिखा है। इस देश में पहिले कोल और चेरू (चोल) लोग बहुत रहते थे। शुनक और अजक इस वँश में प्रसिद्ध हुए। कहते हैं कि ब्राह्मणों ने लड़ कर इन दोनों को निकाल दिया। इसी इतिहास से भुइंहार जाति का भी सूत्रपात होता है और जरासन्ध के यज्ञ से भुइंहारों की उत्पत्ति वाली किम्वदन्ती इसका पोषण करती है। बहुत दिन तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहाँ राज्य करते रहे। किन्तु एक जैन पण्डित ( जो ८०० वर्ष ईसामसीह के पूर्व हुआ है ) लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीत कर निकाल दिया। कहते हैं कि बिहार के पास बारागञ्ज में इसके किले का चिन्ह भी है। यूनानी विद्वानो और वायुपुराण के मत से उदयाश्व ने मगधराज संस्थापन किया। इसका समय ५५० ई० पू० बतलाते हैं और चन्द्रगुप्त को इससे तेरहवाँ राजा मानते हैं। यूनानो लोगो ने सोन का नाम Erannobaos (इरन्नोबाओस) लिखा है, यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रंश है। हिरण्यवाह, स्वर्णनद और शोण का अपभ्रंश सोन है। मेगास्थनीज अपने लेख मे पटने के नगर को ८० स्टेडिया ( आठ मील ) लम्बा और १५ चौड़ा लिखता है, जिससे स्पष्ट होता है कि पटना पूर्वकाल ही से लम्बा नगर है* उसने उस समय

* जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियों ने उस समय इस धूम से किया है उस की वर्तमान स्थिति यह है। पटने का जिला २४'५८' से २५'४२ लैट० और ८४'४४ से ८६'०५ लौंगि० पृथ्वी २१०१ मील समचतुष्कोण ! १५५९६३८ मनुष्यसंख्या। पटने की सीमा उत्तर

नगर के चारों ओर ३० फुट गहरी खाई; फिर ऊंची दीवार और उसमें ५७० बुर्ज और ६४ फाटक लिखे हैं। यूनानी लोग जो इस देश को Prassi प्रास्सि कहते हैं वह पालाशी का अपभ्रंश बोध होता है, क्योंकि जैनग्रन्थों में उस भूमि के पलाश वृक्ष से आच्छादित होने का वर्णन देखा गया है।

जैन और बौद्धों से इस देश से और भी अनेक सम्बन्ध हैं। मसीह से छः सौ बरस पहले बुद्ध पहले पहल राजगृह ही में उदास होकर चले गये थे। उस समय इस देश की बड़ी समृद्धि लिखी है और राजा का नाम बिम्बसार लिखा है। (जैन लोग अपने बीसवें तीर्थङ्कर सुव्रत स्वामी का राजगृह में कल्याणक भी मानते हैं)। बिम्बसार ने राजधानी के पास ही इनके रहने को कलद नामक बिहार भी बना दिया था। फिर अजातशत्रु और अशोक के समय में भी बहुत से स्तूप बने। बौद्धों के बड़े बड़े धर्मसमाज इस देश में हुए। उस काल में हिन्दू लोग इस बौद्ध धर्म के अत्यन्त विद्वेषी थे। क्या आश्चर्य है कि बुद्धो के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगो ने अपवित्र ठहराया हो और गौतम की निन्दा ही के हेतु अहिल्या की कथा बनाई हो।

---

गंगा, पश्चिम सोन, पूर्व मुंगेर का जिला और दक्षिण गया का जिला। नगर की वस्ती अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हजार घर हैं। साढ़े आठ लाख मन के लगभग बाहर से प्रतिवर्ष यहां माल आता और पांच लाख मन के लगभग जाता है। हिन्दुओं में छः जातियां यहां विशेष हैं। यथा एक लाख अस्सी हजार ग्वाला, एक लाख सत्तर हजार कुनबी, एक लाख सत्रह हजार भुइहार, पचासी हजार चमार, अस्सी हजार कोइरी और आठ हजार राजपूत। अब दो लाख के आस पास मुसलमान पटने के जिले में बसते हैं।

भारत नक्षत्र नक्षत्री राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे भाग मे इस समय और देश के विषय मे जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं। इस से बहुत सी बातें उस समय की स्पष्ट हो जायंगी।

प्रसिद्ध यात्री ह्नियानसांग सन् ६३७ ई० मे जब भारतवर्ष में आया था तब मगधदेश हर्षवर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार में था। किन्तु दूसरे इतिहास लेखक सन् २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओ को मगध का राजा बतलाते है और अन्ध्रवंश का भी राज्यचिन्ह सम्भलपुर मे दिखलाते है।

सन् १२९२ ई० मे पहले इस देश मे मुसलमानों का राज्य हुआ। उस समय पटना, बनारस के बन्दावत राजपूत राजा इन्द्रदमन के अधिकार में था। सन् १२२५ मे अलतिमश ने गयासुद्दीन को मगध प्रान्त का स्वतन्त्र सूबेदार नियत किया। इसके थोड़े ही काल पीछे फिर हिन्दू लोग स्वतन्त्र हो गए। फिर मुसलमानो ने लड़ कर अधिकार किया सही, किन्तु झगड़ा नित्य होता रहा। यहाँ तक कि सन् १३९३ म हिन्दू लोग स्वतन्त्र रूप मे फिर यहाँ के राजा हो गए और तीसरे महमूद की बड़ी भारी हार हुई। यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था। इस समय मे गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश छोड़ कर लड़ने आए *। ये और पञ्जाब से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिन्दू मगध देश मे जाकर प्राणत्याग करना बड़ा

---

* गया के भूगोल में पण्डित शिवनारायण त्रिवेदी भी लिखते हैं—"औरंगाबाद से तीन कोस अग्निकोण पर देव बड़ी भारी बस्ती है। यहा श्री भगवान् सूर्य्यनारायण का बड़ा भारी सगीन पश्चिम रुख का मन्दिर है। यह मन्दिर देखने से बहुत प्राचीन जान पड़ता है। यहाँ कातिक और चैत्र

पुण्य समझते थे। प्रजापाल नामक एक राजा ने सन् १४०० के लगभग बीस बरस मगधदेश को स्वतन्त्र रक्खा। किन्तु आर्यमत्सरी दैवने यह स्वतन्त्रता स्थिर नही रक्खी और पुण्यधाम गया फिर मुसलमानो के अधिकार मे चला गया। सन् १४७८ तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार मे रहा फिर बहलूलवंश ने इस को जीत लिया था, किन्तु १४९१ मे शाहंशाह ने फिर जीत लिया। इसके पीछे बगाल के पठानों से और जौनपुर वालो से कई लड़ाई हुई और १४९४ मे दोनो राज्य मे एक सुलहनामा हो गया। इसके

---

की छठ को बड़ा मेला लगता है। दूर दूर के लोग यहां आते और अपने लडकों का मुण्डन छेदन आदि की मनौती उतारते हैं। मन्दिर से थोड़ी दूर दक्खिन बाजार के पूरब ओर सूर्य्यकुंड का तालाब है। इस तालाब से सटा हुआ और एक कचा तालाब है उसमें कमल बहुत फूलते हैं। देव राजधानी है। यहा के राजा महाराजा उदयपुर के घराने के मडियार राजपूत हैं। इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम में बहुत प्रसिद्ध होते आये हैं। यहा के महाराज श्री जयप्रकाशसिंह के० सी० एस० आई० बड़े शूर सुशील और उदार मनुष्य थे। यहा से दो कोस दक्खिन कंचनपुर में राजा साहिब का बाग और मकान देखने लायक बना है। देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है, उसके पास पहाड के ऊपर देव के सूर्य्यमदिर के ढंग का एक महादेव का मन्दिर है। पहाड के नीचे एक टूटा गढ भी देख पडता है। जान पडता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहा ही रहते थे, पीछे देव में बसे। और देव उमगा दोनों इन्ही की राजधानी थी, इससे दोनों नाम साथ ही बोले जाते हैं (देवमूँगा) तिल सक्रांति को उमगा में बडा मेला लगता है।" इससे स्पष्ट हुआ कि उदयपुर से जो राणा लोग आये उन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं। और विहारदर्पण से भी यह बात पाई जाती है कि मड़ियार लोग मेवाड़ से आये हैं।

पीछे सूर लोगों का अधिकार हुआ और शेरशाह ने बिहार छोड़ कर पटने को राजधानी किया। सूरों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई०) यह देश मुग़लों के आधीन हुआ और अन्त में जरासन्ध और चन्द्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आय्य वेश और आर्य्य नाम परित्याग कर के औरङ्गजेब के पोते अजामशाह के नाम पर अपना नाम अज़ीमाबाद प्रसिद्ध किया। (१६९७ ई०) बंगाले के सूबेदारों मे सब से पहिले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतन्त्र समझा था, किन्तु १७५७ ई० की पलासी की लड़ाई में मीरजाफ़र अङ्गरेज़ों के बल से बिहार, बंगाल और उड़ीसा का अधिनायक हुआ। किन्तु अन्त में जगद्विजयी अङ्गरेज़ो ने सन् १७६३ में पूर्व मे पटना अधिकार कर के दूसरे बरस बकसर की प्रसिद्ध लड़ाई जीत कर स्वतन्त्र रूप से सिहचिन्ह की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रान्त मात्र जो हिन्दोस्तान के मानचित्र में लाल रङ्ग से स्थापित कर दिया।

जस्टिन ( Justin ) कहता है—(१) सन्द्रकुत्तस महा पराक्रम था। असंख्य सैन्य संग्रह कर के विरुद्ध लोगों का इसने सामना किया था। डियोडारस सिक्यूलस ( Deodorus Siculus ) कहता है—(२) प्राच्यदेश के राजा ज़न्द्रमा के पास २०००० अश्व, २०००० पदाती २००० रथ और ४००० हाथी थे। यद्यपि यह Xandramas शब्द चन्द्रमा का अपभ्रंश है, किन्तु कई भ्रान्त यूनानियों ने नन्द को भी इसी नाम से लिखा है।

---

(1) Justin His. Phellipp. Lib. XV Chap. IV.
(2) Deodorus Siculus XVII. 93.

किन्तस (Quintus Curtius) लिखता है—(३) चन्द्रमा के चौरकार पिता ने पहले मगधराज को फिर उसके पुत्रों को नाश करके रानी के गर्भ से अपने उत्पन्न किए हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया। स्ट्राबो (Strabo) कहता है—(४) सेल्यूकस ने मेगास्थनिस को सन्द्रकुत्तस के निकट भेजा और अपना भारतवर्षीय समस्त राज्य देकर उससे सन्धि कर ली। ओरियन (Orriun) लिखता है—(५) मेगास्थनिस अनेक बार सन्द्रकुत्तस की सभा में गया था। प्लूटर्क (Plutarch) ने (६) चन्द्रगुप्त को दो लक्ष सेना का नायक लिखा है। इन सब लेखों को पौराणिक वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकन्दरकृत पुरुपराजय के पीछे मगधराज मन्त्री द्वारा निहत हुए और उनके लड़के भी उसी गति को पहुँचे और उसके पीछे चन्द्रगुप्त राजा हुआ, किन्तु बहुत से यूनानी लेखकों ने चन्द्रगुप्त को पटरानी के गर्भ मे चौरकार से उत्पन्न लिखकर व्यर्थ अपने को भ्रम में डाला है। चन्द्रगुप्त क्षत्रिय-वीर्य से दासी मे उत्पन्न था यह सर्व साधारण का सिद्धांत है। (७) इस क्रम से ३२७ ई० पू० मे नन्द का मरण और ३१४ ई० पू० में चन्द्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है। पारसदेश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति सुन्दर कन्या हुई थी वही चन्द्रगुप्त को दी गई। ३०२ ई० पू० में यह सन्धि और विवाह

(3) Quintus Curtius IX. 2.

(4) Strabo XV. 2 9.

(5) Orriun Indica X. 5.

(6) Plutarch Vita Alexandri O. 62.

(७) टाड आदि कई लोगों का अनुमान है कि मोरी वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चित्तौर के राजा थे वे भी मौर्य थे। क्या चन्द्रगुप्त चौहान था? या ये मोरी सब शूद्र थे?

हुआ, इसी कारण अनेक यवनसेना चन्द्रगुप्त के पास रहती थी। २९२ ई० पू० मे चन्द्रगुप्त २४ बरस राज्य करके मरा।

चन्द्रगुप्त के इस मगधराज को आईने अकबरी में मकता लिखा है। डिग्विग्नेस (Deguignes) कहता है कि चीनी मगध देश को सकियात कहते हैं। केम्फर (Kemfer) लिखता है कि जापानी लोग उसको मगत् कफ कहते हैं। (कफ शब्द जापानी में देशवाची है) प्राचीन फारसी लेखकों ने इस देश का नाम मावाद वा मुवाद लिखा है। मगधराज्य में अनुगांग प्रदेश मिलने ही से तिब्बतवाले इस देश को अनुखेक वा अनोनखेक कहते हैं; और तातारवाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं।

सिसली डिउडोरस ने लिखा है, कि मगध राजधानी पालीपुत्र भारतवर्षीय हर्क्यूलस (हरि कुल) देवता द्वारा स्थापित हुई। सिसरो ने हर्क्यूलस (हरि कुल) देवता का नामान्तर बेलस (बलः) लिखा है। बल शब्द बलदेव जी का बोध करता है और इन्हीं का नामान्तर बली भी है। कहते हैं कि निजपुत्र अङ्गद के निमित्त बलदेव जी ने यह पुरी निर्माण की, इसी से बलीपुत्र पुरी इसका नाम हुआ। इसी से पालीपुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया। पाली भाषा, पाली धर्म, पाली देश इत्यादि शब्द भी इसी से निकले हैं। कहते हैं बाणासुर के बसाए हुए जहाँ तीन पुर थे उन्हीं को जीत कर बलदेव जी ने अपने पुत्रों के हेतु पुर निर्माण किए। यह तीनों नगर महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास हाते मे, एक विदर्भदेश में (मुजफ्फरपुर वर्त्तमान नाम) और एक (राजमहल वर्त्तमान नाम से) बङ्गदेश में है। कोई कोई बालेश्वर मैसूर

पुरनियाँ प्रभृति को भी बाणासुर की राजधानी बतलाते हैं। यहाँ एक बात बड़ी विचित्र प्रकट होती है। बाणासुर भी बलीपुत्र है। क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलिपुत्र शब्द निकला हो। कोई नन्द ही का नामान्तर महाबली कहते हैं और कहते हैं कि पूर्व मे गङ्गाजी के किनारे नन्द ने केवल एक महल बनाया था, उसके चारों ओर लोग धीरे २ बसने लगे और फिर यह पत्तन (पटना) हो गया। कोई महाबली के पितामह उदसी, उदासी, उदय, श्रीउदयसिंह (?) ने ४५० ई० पू० इसको बसाया मानते हैं। कोई पाटली देवी के कारण पाटलिपुत्र मानते हैं।

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम सुमाल्य लिखा है। बृहत्कथा मे लिखते है कि शकटाल ने इन्द्रदत्त का शरीर जला दिया इससे योगानन्द ( अर्थात् नन्द के शरीर में इन्द्रदत्त की आत्मा ) फिर राजा हुआ। व्याडि जाने के समय शकटाल को नाश करने का मन्त्र दे गया था। वररुचि मन्त्री हुआ, किन्तु योगानन्द ने मदमत्त होकर उसको नाश करना चाहा, इससे वह शकटार के घर में छिपा। उसकी स्त्री उपकोशा पति को मृत समझ कर सती हो गई। योगानन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किन्तु फिर तपोवन में चला गया। फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नन्द के नाश का कारण हुआ। उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त जो कि योगानन्द का पुत्र था उसको मार कर चन्द्रगुप्त को, जो कि असली नन्द का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया।

ढुंढि पण्डित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दों में मुख्य था। इसके दो स्त्रियाँ थीं। सुनन्दा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी. उस का नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहाँ गया और ऋषिकृत मार्जन के समय सुनन्दा पर नौ

और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी। मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रसन्न होकर बरदान दिया। सुनन्दा को एक मॉसपिण्ड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने मॉस पिण्ड काट कर नौ टुकड़े किये जिससे नौ लड़के हुए। मौर्य के सौ लड़के थे, जिसमें चन्द्रगुप्त सब से बड़ा बुद्धि-मान् था। सर्वार्थसिद्धि ने नन्दो को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नन्दों ने ईर्षा से मौर्य्य और उसके लड़कों को मार डाला, किन्तु चन्द्रगुप्त चाणक्य ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नन्दो को नाश करके राजा हुआ।

योहीं भिन्न भिन्न कवियो और विद्वानों ने भिन्न भिन्न कथायें लिखो हैं। किन्तु सब के मूल का सिद्धान्त पास पास एक ही आता है।

इतिहास-तिमिर-नाशक में इस विषय में जो कुछ लिखा है वह नीचे प्रकाश किया जाता है।

बिम्बसार को उसके लड़के अजातशत्रु ने मार डाला। मालूम होता है कि यह फसाद ब्राह्मणो ने उठाया। अजातशत्रु बौद्ध मत का शत्रु था। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध श्रीवस्ति में रहने लगा। यहाँ भी प्रसेनजित को उसके बेटे ने गद्दी से उठा दिया; शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु मे गया।

अजातशत्रु की दुश्मनी बौद्ध मत से धीरे धीरे बहुत कम हो गई। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध फिर मगध में गया। पटना उस समय एक गाँव था। वहाँ हरकारों की चौकी में ठहरा। वहाँ से

विशाली (१) में गया। विशाली की रानी वेश्या थी वहां से पावा (२) गया वहा से कुशीनार गया। बौद्धों के लिखने बमूजिब उसी जगह सन् ईसवी ५४३ बरस पहले ८० वर्ष की उम्र में साल के वृक्ष के नीचे बाईं करवट लेटे हुए इस का निर्वाण (३) हुआ। काश्यप उस का जानशीन हुआ। अजातशत्रु के पीछे तीन राजा अपने बाप को मार कर मगध की गद्दी पर बैठे, यहां तक कि प्रजा ने घबराकर विशाला की वेश्या के बेटे शिशुनाग मन्त्री को गद्दी पर बैठा दिया। यह बड़ा बुद्धिमान् था। इस के बेटे काल अशोक ने, जिस का नाम ब्राह्मणों ने काकवर्ण भी लिखा है, पटना अपनी राजधानी बनाया।

जब सिकन्दर का सेनापति बाबिल का बादशाह सिल्यूकस सूबेदारों के तदारुक को आया, पटने से सिन्धु किनारे तक नन्द के बेटे चन्द्रगुप्त के अमल दखल में पाया, बड़ा बहादुर था, शेर ने इस का पसीना चाटा था और जंगली हाथी ने इसके सामने सिर झुका दिया था।

---

(१) जैनी महावीर के समय विशाली अथवा विशाला का राजा चेटक * बतलाते हैं, यह जगह पटने के उत्तर तिरहुत में है; उजड़ गई है। वहां वाले अब उसे बसहर पुकारते हैं।

(२) जैनी यहा महावीर का निर्वाण बतलाते हैं, पर जिस जगह को अब पावापुर मानते हैं असल में वह नहीं है। पावा विशाली से पश्चिम और गंगा से उत्तर होना चाहिये।

(३) जैन अपने चौबीसवें अर्थात् सब से पिछले तीर्थंकर महावीर का निर्वाण विक्रम के सवत् से ४७०, अर्थात् सन् ईस्वी से ५२७ बरस पहले बतलाते हैं और महावीर के निर्वाण से २५० बरस पहले अपने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण मानते हैं।

---

* कैसे आश्चर्य की बात है, चेटक रंडी के भड़वे को भी कहते हैं (हरिश्चन्द्र)।

पुराणों में बिम्बसार को शिशुनाग के बेटे काकवर्ण का परपोता बतलाया है और नन्दिवर्द्धन को बिम्बसार के बेटे अजातशत्रु का परपोता; और कहा है कि नन्दिवर्द्धन का बेटा महानन्द का बेटा शूद्री से महापद्मनन्द और इसी महापद्मनन्द और उसके आठ लड़को के बाद, जिन्हे नवनन्द कहते है, चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा। बौद्ध कहते है कि तक्षशिला के रहनेवाले चाणक्य ब्राह्मण ने धननन्द को मार के चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और वह मोरिया नगर के राजा का लड़का था और उसी जाति का था जिस मे शाक्यमुनि गौतम पैदा हुआ।

मेगास्थिनीज लिखता है कि पहाड़ों मे शिव और मैदान मे विष्णु पुजाते हैं। पुजारी अपने बदन रंग * कर और सिर मे फूलो को माला लपेट कर घण्टा और झांझ बजाते है। एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की स्त्री ब्याह नही सकता है और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नही कर सकता है। हिन्दू घुटने तक जामा पहनते है और सिर और कन्धो पर कपड़ा † रखते हैं। जूते उन के रङ्ग बरङ्ग के चमकदार और कारचोबी के होते है। बदन पर अकसर गहने भौं मिहदी से रंगते है और दाढ़ो मूछ पर खिजाब करते है। छतरीं, सिवाय बड़े आदमियो के, और कोई नहीं लगा सकता। रथों में लड़ाई के समय घोड़े और मंजिल काटने के लिये बैल जोते जाते है। हाथियो पर भारी जर्दोजी झूल डालते है। सड़कों की मरम्मत होती है। पुलिस का अच्छा इन्तिजाम है। चन्द्रगुप्त के लशकर में औसत चोरी तीस रुपये रोज से जियादा नहीं सुनी जाती है। राजा जमीन की पैदावार से चौथाई लेता है।

चन्द्रगुप्त सन् ई० के ९१ बरस पहले मरा। उसके बेटे बिन्दुसार के पास यूनानी एलची दयोमेकस ( Diamachos ) आया था

* चन्दन इत्यादि लगाकर।

† अर्थात पगड़ी दुपट्टा।

परन्तु वायुपुराण में उसका नाम भद्रसार और भागवत में बारिसार और मत्स्यपुराण में शायद वृहद्रथ लिखा है केवल विष्णुपुराण बौद्ध ग्रन्थो के साथ बिन्दुसार बतलाता है। उसके १६ रानी थी और उनसे १०१ लड़के, उनमे अशोक * जो पीछे से "धर्म्मअशोक" कहलाया, बहुत तेज था उज्जैन का नाजिम था। वहां के एक सेठ + की लड़की देवी उससे ब्याही थी, उसी से महेन्द्र लड़का और संघमिता (जिसे सुमित्रा भी कहते हैं) लड़की हुई थी।

---

* जैनियों के ग्रन्थों में इसी का नाम अशोक भी लिखा है।

+ सेठ श्रेष्ठों का अपभ्रंश है, अर्थात् जो सब से बड़ा हो।

# शब्दार्थ

पृष्ठ ३—जनस्थान=मनुष्यों के रहने का स्थान।

पृष्ठ ४—प्रयाण=गमन। उद्धत=अक्खड़। निविड़=घोर।

पृष्ठ ५—महामात्य=प्रधान मंत्री ( महा अमात्य )

पृष्ठ ७—वृत्त=समाचार।

पृष्ठ ८—कुशा=डाभ।

पृष्ठ ९—करार=वचन, प्रतिज्ञा।

पृष्ठ १०—औरस=अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र। आसु=शीघ्र। रजताई=सफेदी। प्रवाल=मूंगा। रास=ढेर। भैम=एक राजा का नाम। वासव=इन्द्र। कैक=कई एक।

पृष्ठ १२—अभिचार=यंत्र मंत्र द्वारा मारण उच्चाटन आदि हिंसा कर्म। निर्माल्य=देवार्पित वस्तु। सद्य=शीघ्र।

पृष्ठ १४—लोभ परतंत्र=लोभी। कृत्या=तंत्र प्रयोग से उत्पन्न राक्षसी।

पृष्ठ १९—लबारी=झूठा ( चंद्रमा नहीं है तो )। शर्वकल्याण-कर, शिव।

पृष्ठ २१—मुशल=मूशल ( नाज कूटने का यंत्र ) सघन=प्रमाण में अधिक।

पृष्ठ २७—कालसर्पिणी=काल रूपी नागिन।

पृष्ठ ३३—विराग=विरक्ति। क्षपणक=दिगंबर यति के वेस में चाणक्य का एक भेदिया।

पृष्ठ ३५—कलकल=कोलाहल।

पृष्ठ ४३—हिमाद्रि=हिमालय पर्वत ।

पृष्ठ ४६—मण्डल=व्यूह । बोहनी=प्रारंभिक विधि ।

पृष्ठ ४९—बारवधू=वेश्या ।

पृष्ठ ५०—असु=प्राण । बुद्धिसर=बुद्धि रूपी बाण से ।

पृष्ठ ५३—योधनै=योधाओं से ।

पृष्ठ ५५—घटोत्कच=भीमसेन का पुत्र । करन=कर्ण ( महाभारत की कथा )

पृष्ठ ५७—अभिसेक=राजतिलक । बर्बर=जाति विशेष ।

पृष्ठ ६८—कौमुदी महोत्सव=कार्तिकी पूर्णिमा के दिन होने वाला उत्सव । मूरछा=बेहोशी ।

पृष्ठ ७२—वृषल=शूद्रा से उत्पन्न, चन्द्रगुप्त ।

पृष्ठ ७३—निर्वेरिकै=पूरा करके । विट=सखा ।

पृष्ठ ७४—धरसि=नाश ।

पृष्ठ ७५—सुरधुनी-कन=गंगाजी की बूंदें ।

पृष्ठ ७७—घनपटली=मेघों की छत । डगरे=चलायमान होने वाले । दन्तपात=दांत टूटना ।

पृष्ठ ८९—वलय=कङ्कण । अलक=बाल ।

पृष्ठ १०९—खसौटा=लिखावट ।

पृष्ठ ११५—अन्वित=मिला हुआ ।

पृष्ठ ११९—अवगाहि=डूबी हुई । अवनीस=राजा ।

पृष्ठ १२६—गंडजुगल=दोनों गाल ।

पृष्ठ १२९—जलद-नील-तन=जलद के समान नीला तन है जिन का ( कृष्ण भगवान ) । केशी-राक्षस का नाम है जिसको भगवान् कृष्ण ने मारा था ।

पृष्ठ १३०–निवर्हण=निवाहना (कार्य रूप)। वयस्य=मित्र, सखा।

पृष्ठ १३२–अनुगौन=पीछे चलना। आप्त=श्रेष्ठ। सैलेश्वरहि=पर्व्वतेश्वर को।

पृष्ठ १३३–संधान=(धनुष)खींचना। परिखनि=पहिए की लीक।

पृष्ठ १३४–पिङ्क=एक पक्षी का नाम। फाहा=मरहम की पट्टी ब्रन=घाव। पटह=ढोल।

पृष्ठ १३९–निष्क्रय= तेज, धार दार।

पृष्ठ १४६–बसनहि=कपड़ों मे। आरत-बुरा।

पृष्ठ १४७–लेख=पत्र।

पृष्ठ १४८–निषङ्ग=तरकश। जूथाधिप=झुंड का मुखिया।

## कठिन पद्यों का अर्थ

पृष्ठ २२—पद्य संख्या ७-चन्द्रविम्ब=चन्द्रमण्डल, पूर न=पूरा नही। हठ दाप=जिद से, हट से। बुध=बुध ग्रह।

चन्द्रमा के अधूरे ही विम्ब को क्रूर स्वभाव वाला केतु हठ कर के बल से ग्रसना चाहता है। परन्तु बुध जैसे रक्षक होने के कारण वह ऐसा करने को असमर्थ है।

२—चन्द्रविम्ब, पूर न=चन्द्रगुप्त जिसका अभी पूरा अधिकार नही। क्रूर=राक्षस! केतु=मलयकेतु। ग्रास=पकड़ना। बुध=चाणक्य।

अर्थ—राक्षस मलयकेतु का सहायक बनकर अधूरे अधिकार वाले चन्द्रगुप्त को बल से राज्यच्युत करना चाहता है परन्तु ऐसा कौन कर सकता है जबतक कि बुद्धिमान चाणक्य जिस की रक्षा करता है।

पृष्ठ २८—दिसि सरिस.....गजराज को।

मेरी क्रोधाग्नि ने नीति रूप पवन से तीव्र होकर मंत्री रूप वृक्षों को पुरवासियो को छोड़ के जलाकर नन्दवँशरूप वाँसों के बन को समूल नष्ट कर दिया। उससे रिपुरमणी रूपदिशा का मुख रूप चन्द्रमा धुँधला हो गया है। मेरी क्रोधाग्नि शत्रु रूप ईंधन न रहने के कारण अब शान्त हो गई है।

पृष्ठ ४७—तन्त्र मुक्ति .... उपचार।

सर्प पक्ष में:—

जड़ी बूटी तथा तन्त्र मन्त्र जो लोग जानते हैं और विचार कर मण्डल ( घेरा जिस में से सर्प बाहर न जाने पावे ) बनाते है। वही लोग सर्प का उपचार करते हैं। राजा पक्ष में:—जो राज्य प्रबन्ध तथा राजा के प्रसन्न रखने की युक्ति भली भाँति जानते है। और जो शत्रु, मित्र, उदासीन आदि को समझ कर राज्य का स्थापन करते है तथा मंत्र (सलाह) को गुप्त रखते है अथवा सेना का मण्डल ठीक करते है वही लोग राजा को प्रसन्न रख सकते है।

पृष्ठ ४८—जिस प्रकार गुण और नीति के बल से जो यादव-गण अपने शत्रुओं पर विजय पा चुके थे, वे लोग प्रबल होनहार के कारण सब के सब नष्ट हो गये। उसी प्रकार यह बड़ा नन्दकुल भी समूल नाश हो गया इसी सोच मे मुझे दिन रात नित्य जागते ही बीतते हैं। मुझे मेरे भाग्य के जो आश्रय हीन विचित्र चित्र है, दिखाई देते है।

भावार्थ—जिस प्रकार दीवार पर रंग बिरंगे चित्र बनाये जा सकते हैं। जो यदि दीवार का आश्रय नही हो तो चित्र नही बन सकते। अर्थात् नन्दकुल की रक्षा का कोई भी आधार होता तो अच्छा होता। आश्रय न होने पर नन्द वंश के उद्धार के उपाय केवल खयाली चित्र हैं।

कृष्ण भगवान् की रक्षा में जब यादव लोग बहुत बढ़ गये और उनके अभिमान का वारापार न रहा तो भगवान् की प्रेरणा से उनको प्रभास क्षेत्र में ब्राह्मण से शाप लगा जिसके कारण वे सब आपस में कट मर गये। केवल बलिराम तथा कृष्ण दो ही शेष रह गये थे। तब बलिराम तो योगाभ्यास से समुद्र के तीर अन्तर्द्धान हो गये और कृष्ण भगवान् एक व्याधा के हाथ से मारे गये जिसको कि उन्होंने बालि वानर रूप में पम्पापुर में मारा था।

उसी प्रकार ब्राह्मण के द्वारा ही नंदवंश का सर्व नाश हुआ।

पृष्ठ ५१—नृपनन्द काम.....पाइ है।

जैसे चाणक्य ने अपनी नीति कुशलता से नंद वंश का सर्व नाश कर चन्द्रगुप्त का स्थापन किया। उसी प्रकार मेरे बुढ़ापे के कारण मेरी काम वासना जाती रही और धर्म उसका स्थानापन्न हुआ है। जैसे समय पाकर लोभ जिस प्रकार धर्म पर विजय पाने का प्रयत्न करता है वैसे ही राक्षस चन्द्रगुप्त पर विजय पाना चाहता है। परन्तु लोभ (बुढ़ापे के कारण) और राक्षस (रात दिन के शोच के कारण) शिथिल बल हैं इसलिये उन पर विजय पाना कठिन काम है।

पृष्ठ ५२—सकल कुसुम.....जगकाज!

रसिक सिरोमणि भौंरा सब फूलों से रस लेकर जिस प्रकार शहद बनाता है और उसे जो पीछे छोड़ता है (अर्थात् बचा रखता है) तो उससे संसार के लोगों को बड़ा लाभ होता है। (अर्थात् मैंने कुसुमपुर का सब हाल जान लिया है उससे सब काम ठीक होगा।)

पृष्ठ ५३—लै वाम.....आलिङ्गन करे।

यहाँ कवि ने नन्दवँश की जो राजश्री है उसको एक स्त्री रूप

ठहराया है और उस पर चन्द्रगुप्त का अधिकार नीति संगत नहीं होने के कारण उसको दाईं ओर बैठी हुई कल्पना किया है।

अर्थ—नंदवंश की राजश्री चन्द्रगुप्त को अपनाने में संकोच करती है। ( क्योंकि राक्षस मंत्री चन्द्रगुप्त को राज्य से गिराने के प्रयत्न मे लगा हुआ था और चाणक्य उसकी रक्षा करने पर था ) वह अपना लता रूप बायां हाथ चन्द्रगुप्त के गले पर रखती है पर वह गिर २ पड़ता है और दांये हाथ को भी गोद के बीच मे ले गिरता है अर्थात् जैसे ही दोनो हाथों को आलिङ्गन करने का रखती है परन्तु गाढ़ा स्नेह नहीं होने से ( पेट में डरता है कि कहीं राक्षस फिर इनको पदच्युत न कर दे ) उससे छाती से छाती नही मिलती अथात् गाढ़ालिङ्गन अब भी नही करती।

पृष्ठ ५५—कर्ण—कुन्ती के पुत्र थे। कुन्ती बचपन मे ही ऋषि मुनियों की सेवा अधिक किया करता था। इस पर दुर्वासा मुनि ने प्रसन्न होकर उसको वह विद्या सिखा दी कि जिस देवता की वह पूजा करे उसके प्रसाद से वह आपत्तिकाल में पुत्र पैदा कर सके। उसने मुनि की शिक्षानुसार परीक्षार्थ सूर्य की प्रार्थना की और कर्ण पैदा हुये। इस समय कुन्ती क्वारी थी इसलिये उसने अपवाद वश कर्ण को नदी मे बहा दिया। वहाँ से सूत उठा ले गया और पालन पोषण किया इन्होंने परशुरामजी से विद्या सीखी।

जब कौरव पाण्डव द्रोणाचार्यजी से धनुर्विद्या सीख चुके तब उन सब की परीक्षा एक रङ्ग भूमि में हुई। कर्ण भी वहाँ आये। इन्होंने अर्जुन का बल देख कर उनसे लड़ना चाहा पर कृपाचार्य जी ने इनको राजपुत्र न होने के कारण युद्ध से रोक दिया। उसी समय दुर्योधन ने ( जो पाण्डवों से जलता था कर्ण को अङ्ग देश का राजा बना दिया परन्तु अब भी लड़ाई न हुई। दुर्योधन तथा कर्ण में गहरी मित्रता हो गई। कर्ण महाभारत मे दुर्योधन की

और से लड़े थे। कर्ण के पास कुछ ऐसे बाण थे जो व्यर्थ नहीं जाते थे उनको इन्द्र माँग ले गये कि कहीं ये अर्जुन को मार न दें और उसके बदले मे अमोघ शक्ति दे गये। कर्ण उस शक्ति से अर्जुन को मारना चाहते थे परन्तु वह शक्ति कृष्ण की प्रेरणा से घटोत्कच पर छोड़ी गई।

घटोत्कच—यह एक राक्षसी से पैदा भीम का पुत्र था और बड़ा पराक्रमी था।

पृष्ठ ६३—वह सूली·····मनतें।

वह जो राज्य दण्ड की सूली गढ़ी है बड़ी दृढ़ है उसी ने चन्द्र का राज्य स्थिर किया है। वह जो सूली मे रस्सी है वही मानों राज्य लक्ष्मी चन्द्रगुप्त में लपटी हुई है।

पृष्ठ ७५—अहो·····अहो विभव दरसाई।

यह शरद ऋतु महादेव बन कर आई है जो फूले हुये कांसों का ही भस्म रमाये हुये है और उगा हुआ चन्द्र ही मानों शीष फूल है जो बड़ी शोभा दे रहा है। बादलो की अवली ही मानों गज चर्म है। खिले हुये पुष्प मानो मुण्डमाला हैं। राजहंस ही मानो महादेव जी की हंसी है जिससे आनन्द आता है।

पृष्ठ ७७—हरौ हरि·····उरमाहीं।

शरद ऋतु को आई हुई जान कर जगत के शुभचिंतक शेष-नाग की गोद से जागे हुये कृष्ण भगवान् के कुछ २ खुले हुये, कुछ मुंदे हुये, आलस से भरे हुये, लाल कमल के रंग जैसे मतवाले ठहरे हुये भी चलायमान, तथा शेष नाग की मणि की कान्ति के चकाचौंध से संकुचित न होने वाले, ( जागते समय ) नींद और परिश्रम की दशा में लक्ष्मी को अत्यन्त प्यारे लगने वाले ऐसे नेत्र हमारी बाधा दूर करें।

पृष्ठ ९८—एक गुनी तिथि ... लाभ अनेक।

तिथि का फल एक गुना, नक्षत्र का फल चौगुना, लग्न का फल तीन गुना होता है सब पत्रों में यही कहा है। जिस लग्न में क्रूर ग्रह न हो वह शुभ होती है यहाँ पर केतु है पर अस्त है। यदि शुभ मुहूर्त में सन्देह है तो चन्द्र का बल जो लग्न से लाख गुना अधिक है देख कर जाओ तो अनेक लाभ प्राप्त होंगे।

अथवा उत्तरार्द्ध दोहा का अर्थ—ग्रह तो शुभ है परन्तु क्रूर ग्रह अर्थात् केतु मलयकेतु को छोड़कर जाओ। चन्द्र बल भद्रभट आदि को साथ लो तब तुम्हारा कल्याण होगा अर्थात् तुम मंत्री हो जाओगे।

पृष्ठ १०२—देश और काल को समझना ही मानों कलश है। उसमें बुद्धि रूपी जल भरा है जिसके सींचने से चाणक्य की नीति रूपी बेलि बहुत फल देवेगी।

पृष्ठ १२८—केशी एक राक्षस था जो कँस का भेजा हुआ कृष्ण को मारने गया था। उसने घोड़े का रूप धर कर उनकी बाँह पकड़ ली। उन्होंने अपनी भुजा लम्बी और गर्म कर दी जिससे वह मर गया।

पृष्ठ १३१—यह फाँसी मुख अर्थात् सिरे पर छः गुनी रस्सी से गुथी हुई है और फन्दा की भाँति बनी हुई है, उसकी जय होवे। जिसकी प्रत्येक गाँठ शत्रु वध में दक्ष है ऐसी चाणक्य की नीति की डोरी, तेरी जय होवे।

पृष्ठ १४१—लोग ऐसा कहते हैं कि शकटदास बच गया तो फिर मारने वाले क्यों मारे गये इसका भेद कुछ समझ में नहीं आता।

——:※:——

## नाटक में आये हुये पात्रों का परिचय

भीभत्सक—यह राक्षस की आज्ञा से चन्द्रगुप्त को सोते में मारने को गया था। परन्तु यह जैसे ही कुछ आदमी लेकर सुरँग में छिपा था जैसे ही चाणक्य शयनागार में गया, दरार से चीटी चावल लाते हुये देख सन्देह में पड़ गया और दीवार में आग लगवा दी।

उन्दुर—यह राक्षस का चर था। राक्षस मलयकेतु की सेना से बिगड़ कर इसी के साथ चन्दनदास को छुटाने आया था।

पर्वतक—अफ़गानिस्तान या उसके आस-पास का कोई लोभी राजा था। चाणक्य ने इसकी सहायता से नन्द वँश के नाश के पश्चात् राक्षस मंत्री को हराया था। चूंकि चाणक्य ने कुसुमपुर को जीतने के लिये आधे राज्य बाँट देने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु जब राक्षस मँत्री हार गया तो उसने पर्वतक को अपनी ओर फोड़ लिया। विष कन्या ( जो राक्षस ने चन्द्रगुप्त के पास उसे मारने को भेजी थी ) चाणक्य ने पर्वतक के पास भेज कर उसे मरवा डाला।

वैरोधक—यह पर्वतक का भाई था। भाई के मारने के पीछे जैसे ही चाणक्य ने आधा राज्य इसको देने के लिये भीतर बुलाया कि बर्बर द्वारा जो चन्द्रगुप्त के मारने को बैठा था मारा गया।

विष्णुशर्म्मा वा निपुणक—चाणक्य का सहपाठी। शुक्र नीति और चौसठ कला से ज्योतिष मे बड़ा प्रवीण था। यह निपुणक के नाम से चाणक्य का भेदिया था। यही राक्षस की अँगूठी लाया था और चाणक्य को दी थी।

सिद्धार्थक—चाणक्य का भेदिया था। इसको शकटदास का मित्र बना कर राक्षस के पास रक्खा था।

समिद्धार्थक—सिद्धार्थक का मित्र था। इसने अपने मित्र के साथ चाण्डाल का भेस बनाया था।

भागुरायण—यह चाणक्य का भेदिया तथा ऊपर से मलयकेतु का मित्र था। इसने अपने को छिपाते हुए समय समय पर मलयकेतु को ऐसा सुझाया कि राक्षस में और मलयकेतु में फूट पड़ जाय।

भासुरक—भागुरायण का सेवक था। यह केवल आने वालों की खबर दिया करता था।

जीवसिद्धि क्षपणक या भदंत—जैनी फ़कीर बना हुआ चाणक्य का भेदिया था। यह जोतिषी भी था।

विजय वर्म्मा—यह चन्द्रगुप्त की फौज में से चाणक्य के सिखाने से मलयकेतु के यहाँ चला गया था।

शारंगरव—चाणक्य का शिष्य।

अचल दत्त कायस्थ—चन्द्रगुप्त का मुंशी था।

शोणोत्तरि—चन्द्रगुप्त का द्वारपाल।

विजयपाल दुर्गपाल—चन्द्रगुप्त के मुख्य सेवक।

विश्वावसु—ब्राह्मण जिस को चन्द्रगुप्त ने गहने पुन्य किये थे

कापाल पाशिक—<br>दण्ड पाशिका— } सूली देने वाले चाण्डाल्य

हिंगुरात—यह चन्द्रगुप्त के द्वारपालों का मुखिया था यह भी चाणक्य की आज्ञा से मलयकेतु के यहाँ जा रहा था।

बलगुप्त—चन्द्रगुप्त का नातेदार भेद लेने को मलयकेतु के यहां जा रहा था।

राजसेन—महाराज के लड़कपन का सेवक था। यह भी चाणक्य का भेदिया बन कर मलयकेतु की सेना में जा रहा था।

भद्रभट—चाणक्य का भेदिया था जो मलयकेतु के यहां नौकर हो गया था।

चन्द्रभानु—यह चन्द्रगुप्त के घोड़ों का अध्यक्ष था। यह भी चाणक्य के कहने से मलयकेतु की फौज में जा मिला था।

सिंहबल दत्त—चन्द्रगुप्त का सेनापति मलयकेतु के यहाँ भर्त्ती हो गया था।

रोहिताक्ष—यह मालवा नरेश का पुत्र था। चन्द्रगुप्त के यहाँ रहता था परन्तु चाणक्य की सलाह से मलयकेतु के यहां चला गया था।

मलयकेतु—पर्वतेश्वर का पुत्र था। पिता के मरने के पीछे यह भी राक्षस की सहायता पाकर चाणक्य पर चढ़ाई करने का प्रयत्न करने लगा परन्तु चाणक्य के चरों द्वारा इस में और राक्षस में फूट पड़ गई और राक्षस जैसे ही चन्द्रगुप्त का मंत्री बना कि यह कैद कर दिया गया। किन्तु राक्षस की राय से इसका राज्य इसे वापिस कर दिया गया।

दीर्घचक्षु—मलयकेतु के द्वार का रक्षक था।

शिखरसेन—मलयकेतु का सेनापति जिस को हाथी से कुचलवाने की पर्वतेश्वर ने आज्ञा दी थी।

विष्णुगुप्त चाणक्य—यह जाति के ब्राह्मण बड़े नीतिज्ञ, वैद्यक, ज्योतिष तथा रसायन आदि के पण्डित थे। ( विशेष कथानक मे )

चन्द्रगुप्त—नंद का सातवाँ पुत्र शूद्रा के पेट से पैदा। ( विशेष कथानक से )

महानन्द—नंद वंशीय मगधदेश का राजा था। ( विशेष कथानक देखो। )

सर्वार्थसिद्धि—यह राजा नंद का भाई था। इस को राजा के मरने के पश्चात् राक्षस ने गद्दी पर बैठाया था पर चाणक्य के

पर्वतेश्वर से मिल कर चढ़ाई करते समय जीव सिद्धि ने राक्ष्य से चाणक्य का डर देकर जंगल को भगा दिया वहीं मरवा भी डाला।

वक्रनास—महानन्द से पूर्व नन्द वंश का मंत्री।

शकटार—यह नंद वंश का मंत्री था तथा जाति का शूद्र था। (विशेष कथानक से)

विचक्षणा—राजा नंद की दासी थी। (विशेष कथानक से)

राक्षस—जाति का ब्राह्मण तथा शकटार के सहायक के रूप में काम करता था। परन्तु शकटार के पीछे प्रधान मंत्री हुआ। नंद वंश के नाश होने पर चाणक्य तथा इनकी नीति की चोटें हुईं।

प्रियंवदक—यह राक्षस का सेवक था।

चन्दनदास—यह पटने का जौहरी राक्षस मंत्री का हार्दिक मित्र था। तथा चाणक्य के राक्षस का कुटुम्ब इस से मांगा परंतु इसने नहीं दिया अतः इसे फाँसी की आज्ञा हुई थी।

जिष्णुदास—चन्दनदास का मित्र था।

शकटदास—यह राक्षस का मित्र था। इसे फाँसी की आज्ञा चाणक्य ने दी थी। परन्तु सिद्धार्थक जो चाणक्य का चर था इसे चाणक्य की आज्ञानुसार बचाकर राक्षस मंत्री के पास लेगया था। राक्षस की प्रेरणा से सिद्धार्थक ने शकटदास से जाली पत्र लिखवाया था कि जिससे मलयकेतु तथा राक्षस में फूट डाली गई थी।

विराधगुप्त वा जीर्ण विष—यह राक्षस का गुप्तचर था। यह बहुधा सपेरे का भेष बना कर भेद लाया करता था।

करभक—राक्षस का भेदिया था इसे पटने भेद लेने भेजा था। परन्तु कोई खबर इसने नहीं दी।

स्तनकलस—राक्षस का मित्र, गवैया और कवि था। इसको राक्षस ने कुसुमपुर को फूट डालने भेजा था। इसने चाणक्य तथा

चन्द्रगुप्त में अनबन हो जाने पर फूट डालने को पद्य पढ़ कर चन्द्र गुप्त को भड़काया था।

बरबर—यह राक्षस का भेदिया था। इसे चन्द्रगुप्त के मारने को भेजा था। परन्तु जब चाणक्य ने वैरोधक को आधा राज्य देने का बहाना किया था और महल मे प्रवेश कराया था तब यह दारुवर्मा बढ़ई के तोरण के निशाने से धोके से मारा गया था।

दारुवर्मा—यह बढ़ई था। राक्षस ने इसे तोरण बना कर चन्द्रगुप्त के मारने को भेजा था किन्तु इसने वैरोधक को मारडाला तब इसके आदमियों ने उसको मार डाला।

अभयदत्त वैद्य—राक्षस ने चन्द्रगुप्त के मारने को भेजा था किन्तु जैसे ही औषधि युक्त विष इसने चन्द्रगुप्त को दिया वैसे ही चाणक्य ताड़ गया और वह विष इसको ही पिला कर मार डाला।

प्रमोदक—यह भी राक्षस का आदमी था शयनागार का प्रबन्धक था राक्षस से अमित धन लेकर चन्द्रगुप्त के मारने का ढोंग रचा। इसके ठाट को देख कर चाणक्य ताड़ गया और मरवाडाला।